

संत

भाषनावलि

(१५७)
(१५८)
संप्रेषकर्ता

शिवनारायण टंडन

●
प्रकाशक

ज्ञानमन्दिर पटकापुर कानपुर

tization by American Academy of Indic Studies. AAIS(U

संत भजनावलि

संग्रहकर्ता

शिवनारायण टंडन

प्रथमवार

३०००

प्रकाशक

ज्ञानमन्दिर पटकापुर कानपुर

मूल्य

॥

zation by American Academy of Indic Studies. AAIS(

समर्पण !

साधु चरित सुभ सरिस कपासू ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा ।
वन्दनीय जेहि जग जस पावा ॥

जो घर में रहते हुए भी महाराज जनक के समान विदेह हैं ।
जो काम, क्रोध, लोभ और मोह को जीतने में संलग्न हैं ।
जो धर्मात्मा हैं और पाप से रहित हैं ।
जो ईश्वर भक्त हैं और सत्य के अनन्य पुजारी हैं ।

—ऐसे साधु चरित, परम यशस्वी,
पूज्य बड़े भइया, लाला गोपालदास जी टंडन के करकमलों
में यह 'भजनावलि' सादर, सप्रेम समर्पित है ।

—शिवनारायण टंडन ।

zation by American Academy of Indic Studies. AAIS(

दो शब्द !

प्यारे पाठक,

यदि आपको अपनं जीवन में, कभी एक ही पुस्तक को जीवनसाथी बनाने की आवश्यकता प्रतीत हो तो निःसंकोच, भजनावलि को, चिरजीवन-संगिनी बना डालिये ।

इस निर्णय के लिए आपको कभी भी पछताना नहीं पड़ेगा ।

इस नन्हों सी पुस्तिका के गर्भ से भक्तहृदय पावन-कारिणी गंगधारा उमड़ रही है । इन थोड़े से पन्नों में सुख और शान्ति का स्वर्गीय संदेश मानसरोवर की विमल, धवल अगम्य, जलराशि की भांति भरा पड़ा है । इन ब्रम्हसूत्र के समान छोटे छोटे पदों द्वारा जो उपनिषद् के वाक्यों से कम माहात्म्य नहीं रखते, आनन्द और निर्वाण का अजल स्रोत बह रहा है जिसमें स्नान कर बड़े से बड़े पापी भी तर गये हैं । फिर पुण्यात्माओं की

तो बात ही क्या है ? इन भजनों का सत्संग थोड़ी ही देर के लिये सही, धरती के प्राणी को चार अंगुल ऊपर उठा देता है । संकलन करते समय, कम अज़कम मुझे तो ऐसा ही प्रतीत हुआ है ।

तो आइये ! अपनी अपनी योग्यता, श्रद्धा, सामर्थ्य, और संस्कार के अनुसार, अपनी अपनी आत्मा की चिर-कालीन तृषा का निवारण कीजिये । जिनके पास लोटा है वे अपना लोटा भर ले जायें । जिनके पास घड़ा है वे अपने घड़े को आकंठ भर लें । और जिनके हाथ छूछे हैं वे नम्रता के साथ तनिक झुक कर चुल्लू भर हो पी लें । मीरा, सूर, तुलसी, नानक और कबीर हिन्दी-जगत के ही नहीं प्रत्युत विश्व के संत साहित्य के, गागर में भरे हुए सागर हैं । परमेश्वर एक है, परन्तु इन भक्त शिरोमणियों ने, अपनी अपनी रुचि और चित्त-वृत्ति के अनुसार उसे भिन्न भिन्न रूपों में पाया है । और विभिन्न नामों से उसका यशोगान किया है ।

मले ही शब्द विन्यास में अन्तर है। पर सबों का संदेश
तो एक ही है :—

नर रैन बीति गई जाग जाग ।
अब भव की तृष्णा त्याग त्याग ॥
यह संसार सराय चलाचल ।
क्यों भटकत है भाग भाग ॥
विषयारस मृग तृष्णा पानी ।
हरि के भजन सूं लाग लाग ॥
नर रैन बीति गई जाग जाग ॥

सचमुच, जो इस संदेश को कान देकर सुनेगा उसी
का जीवन धन्य होगा । वही निर्वाण पद का अधिकारी
बनेगा ।

श्री हरिदासानुदास,
शिवनारायणटंडन

मङ्गलाचरणा



अंखड़ियाँ झाड़ पड़ी, पन्थ निहारि निहारि ।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, नाम पुकारि पुकारि ॥
* * *

नैना नीझर लाइया, रहट बसै निस जाम ।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ करै, कबरु मिलहुग राम ॥
* * *

नाथ एक वर मांग हूँ, मोहिं कृपा करि देहु ।
जनम जनम प्रभु पद कमल, कबहुं घटै जनि नेहु ॥
* * *

रामचन्द्र यश बरनि कै, भयो चाहत अब मौन ।
तुलसी के मुख दीजिये, अबही तुलसी सौन ॥
* * *

राग तिलंग

मन रे परसि हरि के चरण ॥टेका॥ -

सुभग सीतल कँवल कोमल, विविध ज्वाला हरण ।

जिण चरण प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरण ।

जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण ।

जिण चरण ब्रह्माण्ड मेढचो, नखसिखा सिरी धरण ।

जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम धरण ।

जिण चरण कालीनाग नाथ्यो, गोपलीला करण ।

जिण चरण गोबरधन धार्यो, इन्द्र को ग्रव हरण ।

दासि मीरा लाल गिरधर, अगम तारण तरण ॥

राग छायानट

भज मन चरण कवल अविनासी ॥टेक॥

जेताइ दीसे धरण गगन विच्र, तेताइ सब उठ जासी ।

कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी ।

इण देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी ।

यो संसार बहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी ।

कहा भयो है भगवा पहरयाँ, घर तज भये सन्यासी ।

जोगी होय जुगति नहि जाणी, उलटि जनम फिर आसी ।

अरज करो अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी ।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो, जम की फाँसी ॥

राग प्रभाती

जागो बंसीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे ॥टेक॥

रजनी बीती भोर भयो है, घर घर खुले किंवारे ।

गोपी दही मथंत सुनियत है, कँगना के झनकारे ।

उठो लालजी भोर भयो है, सुर नर ठाढ़े द्वारे ।

ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, जय जय सबद उचारे ।

माखन रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे ।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सरण आयाँ कूं तारे ॥

४. राग झिझोटी

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।
छांड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई ।
संतन ठिक बैठि बैठि, लोकलाज खोई ।
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेल फैल गई. आणँद फल होई ।
भगति देखि राजी हुई, जगति देखि रोई ।
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोहीं ॥

राग हमीर

बसो मोरे नैनन में नँदलाल ॥टेक॥
मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैणा बने विसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर वैजंती माल ।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल ।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त वछल गोपाल ॥

(६)

राग त्रिवेनी

निपट वंकट छबि अटके ।

मेरे नैन निपट० ॥टेक॥

देखत रूप मदन मोहन को, पियत पियूखन मटके ।
बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो, अति सुगंध रस अटके ।
टेढ़ी कटि, टेढ़ी करि मुरली, टेढ़ी पाग लर लटके ।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नटके ॥

राग देस

म्हांने चाकर राखो जी,
 गिरधारी लाला चाकर राखो जी ॥टेक॥
 चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठि दरसन पासूं ।
 वृन्दाबन की कुँज गलिन में, गोविन्द-लीला गासूं ।
 चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची ।
 भाव-भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बातें सरसी ।
 मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजंती माला ।
 वृन्दाबन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला ।
 ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच राखूं बारी ।
 साँवरिया के दूँ दरसन पाऊँ, पहिर कुसुम्बी सारी ।
 जोगी आया जोग करन कूं, तप करने सन्यासी ।
 हरि-भजन कूं साधू आये, वृन्दाबन के बासी ।
 मीरा के प्रभु गहिर गँभीरा, हृदे रहो जी धीरा ।
 आधी रात प्रभु दरसन दीन्हों, जमुनाजी के तीरा ॥

राग माल कोस

श्री गिरधर आगे नाचूंगी ॥टेक॥

नाचि नाचि पिवरसिक रिझाऊँ, प्रेमी जन कूं जाचूंगी ।
प्रेमप्रीति की बाँधि घूंघुर, सुरत की कछनी काछूंगी ।
लोक लाज कुल की मरजादा, यामे एक न राखूंगी ।
पिव के पलंगा जा पौढ़ंगी, मीरा हरि रंग राचूंगी ॥

(९)

राग राग श्री

रामनाम रस पीजै मनुआँ, रामनाम रस पीजै ॥टेक॥
तज कुसंग सतसंग बैठि नित, हरि चरचा सुणि लीजै ।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूं, चित्त से बहाय दीजै ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजै ॥

राग छायी टोड़ी

सखी, म्हारो कानड़ो कलेजे की कोर ॥टेक॥
 मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुंडल की झकझोर ।
 बृन्दावन की कुंज गलिन में, नाचत नंद किशोर ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चित चोर ॥

(११)

राग खम्माच

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥टेक॥
 साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय ।
 न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय ।
 जहर का प्याला राणा भेज्यो, अमृत दौन्ह बनाय ।
 न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय ।
 सूल तेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय ।
 साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय ।
 मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय ।
 भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय ॥

(१२)

राग पठमंजरी

मैं तो सावरे के रंग राची ॥टेक॥

साजि सिंगार बाँधि पग घुंघुरू, लोकलाज तजि नाची ।

गई कुमति लई साधु की संगति, भगतरूप भई साँची ।

गाय गाय हरि के गुन निसदिन, काल ब्याल सूं बाँची ।

उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची ।

मीरा श्री गिरधरनलाल सूं, भगति रसीली जाँची ॥

(१३)

राग हवीर

हरि मोरे जीवन प्रान अधार ॥टेक॥

और आसिरो नाहीं तुम बिन, तीनूं लोक मंझार ।

आप बिना मोहि कछू न सुहावे, निरख्यो सब ससार ।

मीरा कहै मैं दास रावरी, दीज्यौ मती बिसार ॥

(१४)

राग गुनकली

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ॥टेक॥

गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ।

रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ ।

रैण दिना वाके संग खेलूँ, ज्युं ज्युं वाहि रिझाऊँ ।

जो पहिरावे सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ ।

मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ ।

जहाँ बैठावे तितहीं बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ ।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ ॥

(१५)

राग मांड

माई री में तो लीयो गोविन्दो मोल ॥टेक॥
 कोई कहै छानै कोई कहै चौड़े, लियो री बजंता डोल ।
 कोई कहै मुंहघो, कोई कहै सुहघो, लियो री तराजू तोल ।
 कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लियो री अमोलिक मोल ।
 याही कूं सब लोग जाणत है, लियो री आँखी खोल ।
 मीरा कूं प्रभु दरसन दीज्यौ, पूरब जनम की कोल ॥

(१६)

राग पीलू

पग घुंघुरू बांध मीरा नाची रे ॥टेक॥
 में तो मेरे नारायण की, आपहि हो गई दासी, रे ।
 लोग कहैं मीरा भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी, रे ।
 बिष का प्याला राणाजी भेज्यो, पीवत मीरा हाँसी, रे ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी, रे ॥

राग देस

दरस बिन दूखण लागे नैण ॥टेक॥

जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहुं न पायो चैन ।
 सबद सुनत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे मीठे बन ।
 बिरह कथा कासूं कहूं सजनी, बह गई करवत अैन ।
 कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण ।
 मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण ॥

(१८)

राग जैजैवन्ती

जा पौढ़ी पलंगा में मैं तो, पलक लगी पल में पिउ आए ।
 मैं जु उठी प्रभु आदर देण कूं, जाग पड़ी प्रभु ढूंढ़ न पाए ।
 और सखी पिउ सोय गमाँए, मैं जु सखी पिव जाग गमाए ।
 आज की बात कहा कहूं सजनी, सपना में हरि लेत बुलाए ।
 बस्त एक जब प्रेम की पकरी, आज भए सखि मन के भाए ॥

१९. राग आनन्द भैरों

सखी मेरी नोंद नसानी हो ।
पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैण बिहानी हो ॥टेक॥
सब सखियन मिलि सीख दर्ई, मन एक न मानी हो ।
बिनि देख्याँ कल नाहि पड़त, जिय ऐसी ठानी हो ।
अंगि अंगि व्याकुल भई, मुखि पिय पिय बानी हो ।
अन्तर वेदन बिरह की, वह पीड़ न जानी हो ।
ज्यूं चातक घन कूं रटै, मछरी जिमि पानी हो ।
मीरा व्याकुल विरहणी, सुध बुध बिसरानी हो ॥

राग पहाड़ी

घड़ी एक नहि आवड़े, तुम दरसन बिन मोय ।
 तुम हो मेरे प्राण जी, कासूं जीवण होय ।
 धान न भावै, नींद न आवै, विरह सतावै मोहि ।
 घायल सी घूमत फिरूं रे, मेरो दरद न जाणै कोय ।
 दिवस तो खाय गमाइयो रे, रैण गमाई सोय ।
 प्राण गमायो झूरतां रे, नैण गमाया रोय ।
 जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीति कियां दुख होइ ।
 नगर ढंढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोइ ।
 पथ निहारो डगर बुहारूं, ऊभी मारग जोइ ।
 मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियां सुख होइ ॥

(२१)

राग जोगिया

हेरी में तो दरद दिवाणी होइ ।

दरद न जाणै मेरो कोइ ॥टेका॥

घायल की गति घायल जाणै, की जिण लई होइ ।

जौहर की गति जौहरी जाणै, की जिन जौहर होइ ।

सूली ऊपर सेज हमारी, सोवणा किस विधि होइ ।

गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलना होइ ।

दरद की मारी बन बन डोलूं, बंद मिल्या नहि कोइ ।

मीरा की प्रभु पीर मिटेगी, जब बंद साँवलिया होइ ॥

राग विहाग

करम गति टारे नाहिं टरे ॥टेक॥

सतवादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे ।

पाँच पाँडु अरु सती द्रौपदी, हाड़ हिमालै गरे ।

जग्य कियो बलि लेण इन्द्रासन, सो पाताल धरे ।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बिष से अमृत करे ॥

(२३)

राग मांड

नातो नाम को मोसूं तनक ने तोड़यो जाइ ॥टेक॥

पाना ज्यूं पीली पड़ी रे, लोग कहें पिंड रोग ।

छाने लाँघण में किया रे, राम मिलण के जोग ।

बाबल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बाँह ।

मूरिख बैद मरम नहिं जाणै, करक कलेजा माँह ।

जा बंदा घर आपणे रे, मेरो नाब न लेइ ।
 में तो दाधी बिरह की रे, तूं काहे कूं दारु देइ ।
 मांस गले गल छीजिया रे, करक रह्या गल आहि ।
 आंगलिया री मूदड़ी, म्हारे आवण लागी बाँहि ।
 रहो रहो पापी पपीहा रे, पिव को नाम न लेइ ।
 जो कोइ बिरहणि साम्हले, पिव कारण जीव देइ ।
 खिणमंदिर खिण आगणे रे, खिण खिण ठाढ़ी होइ ।
 घायल ज्यूं घूमूं सदारी, म्हारी बिया न बूझे कोइ ।
 काढ़ि कलेजो मैं धरूं रे, कौवा तू ले जाइ ।
 ज्यां देसा म्हारो पिव बसै, वे देखै तू खाइ ।
 म्हारे नातो नाब कोरे, और न नातो कोइ ।
 मीरा व्याकुल बिरहिणी रे, पिया दरसन दीजो मोइ ॥

(२४)

राग गूजरी

या मोहन के मैं रूप लुभानी ॥टेक॥
 सुंदर बदन कमलदललोचन, बाँकीचितवन मंदमुसकानी ।
 जमना के नीरे तीरे धेन चरावै, बंशीमें गावै मीठीबानी ।
 तन मन धन गिरधर पर वारूँ, चरणकमल मीरा लपटानी ॥

(२५)

राग कम्पोद

बरजी मैं काहू की नाहि रहूँ ॥टेक॥
 सुनौरी सखी तुम चेतन होइके, मन की बात कहूँ ।
 साध संगति करि हरि सुख लीजै, जगसूँ दूर रहूँ ।
 तन धन मेरे सब ही जावो, भलि मेरो सीस लहूँ ।
 मन मेरो लागी सुमिरण सेती, सब का मैं बोल सहूँ ।
 मीरा के प्रभु हरि अविनासी, सतगुर सरण गहूँ ॥

(२६)

राग श्याम कल्याण

हरि तुम हरो जन की भीर ॥टेक॥
द्रोपता की लाज राखी, तुरत बाढ्यो चीर ।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्यौ आप सरीर ।
हिरणाकुश मारि लीन्हे, धर्यौ नाहिं न धीर ।
बूड़तो गजराज राख्यौ, कियो बाहर नीर ।
दासी मीरा लाल गिरधर, चरण कँवल पै सीर ॥

(२७)

राग मलार

डारि गयो मनमोहन पासो ॥टेक॥
आँबाकी डाल कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जगकेरिहाँसी ।
बिरह की मारी मैं बन बन डोलूं, प्रान तजूं करवत ल्युं कासी ।
मीरा के प्रभु हरि अबिनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ॥

(२८)

राग सोहनी

जोगी मत जा मत जा मत जा,
पाँइ परूँ मैं चेरी तेरी हौं ॥टंक॥
प्रेम भगति को पैड़ो ही न्यारा, हमकूँ गैल बता जा ।
अगर चंदण की चिता बणाऊँ. अपणे हाथ जला जा ।
जल बल भई मस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा ।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा ॥

(२९)

राग जोगिया

पीया बिनि रह्यौइ न जाइ ॥टंक॥
तन मन मेरो पिया पर बारूँ, बार बार बल जाइ ।
निस दिन जोऊँ बाट पिया की, कबर मिलोगे आइ ।
मीरा के प्रभु आस तुमारी, लीज्यौ कंठ लगाइ ॥

(३०)

राग धानी

मोहि लागी लगनगुरु चरनन की ॥टेक॥

चरन बिन कछुवै नाहि भावै, जग माया सब सपनन की ।
भव सागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहितरननकी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु सरनन की ॥

(३१)

राग कलिंगड़ा

सुनी हो मैं हरि आवन की अवाज ॥टेक॥

म्हैल चढ़े चढ़ि जोऊं मेरी सजनी, अब आवै महाराज ।
दादर मोर पपइया बोलै, कोइल मधुरे साज ।
उमग्यो इन्द्र चहूँ दिसि बरसै, दामणि छोड़ी लाज ।
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण के काज ।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, वेग मिलो महाराज ॥

राग सारंग

या व्रज में कछू देख्यो री टोना ॥टेक॥

ले मटुकी सिरचली गुजरिया, आगेमिले बाबानंदजीके छोना ।
दधिको नाम बिसरि गयोप्यारी, लेलेहुरीकोइ स्यामसलोना ।
बृन्दावन की कुंज गलिन में, आँख लगाइ गयो मनमोहना ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सुन्दर स्याम सुघर रसलोना ॥

(३३)

राग दुर्गा

हो गये स्याम दूइज के चंदा ॥टेक॥

मधुवन जाइ भये मधुवनिया, हम पर डारो प्रेम को फंदा ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, अब तो नेह परो कछु मंदा ॥

(३४)

राग जौनपुरी

सखीरी लाज वैरण भई ॥टेक॥

श्रीलाल गोपाल के संग, काहे नाहि गई ।
गठिन क्रूर अक्रूर आयो, साजि रथ कहं नई ।
रथ चढ़ाइ गोपाल लैगो, हाथ मीजत रही ।
कठिन छाती स्याम बिछरत, बिरह तें तन तई ।
दासि मीरा लाल गिरधर, बिखर क्यों न गई ॥

(३५)

राग पीलू

तेरो मरम नहि पायो रे जोगी ॥टेक॥

आसन माँडि गुफा में बैठो, ध्यान हरी को लगायो ।
गल बिच सेली हाथ हाजरियो, अंग भभूति रमायो ।
मीरा के प्रभु हरि अबिनासी, भाग लिख्यो सो ही पायो ॥

३६. राग हमीर

नहिं ऐसो जनम बार बार ॥टेक॥

का जानूं कुछ पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार ।
 बढ़त छिन छिन घटत पल पल जात न लागे बार ।
 बिरछ के ज्यूं पात टूटे, बहुरि न लागे डार ।
 बढ़त छिन छिन घटत पल पल जात न लागे बार ।
 बिरछ के ज्यूं पात टूटे, बहुरि न लागे डार ।
 भव सागर अति जोर कहिये, अनंत ऊँची धार ।
 राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार ।
 ज्ञान चोसर मंडी चौहटे, सुरत पासा सार ।
 या दुनिया में रची बाजी, जीत भावें हार ।
 साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार ।
 दासी मीरा लाल गिरधर जीवणा दिन चार ॥

राग सूहा

चालो मन गंगा जमुना तीर ॥टेक॥
गंगा जमना निरमल पाणी, सीतल होत सरीर ।
बंसी बजावत गावत कान्हों, संग लिया बलबीर ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुंडल, झलकत हीर ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पैसीर ॥

(३८)

राग पीलू

रमइया बिन रह्योइ न जाय ॥टेक॥
खान पान मोंहिं फीको सो लागै, नैणा रहे मुरझाइ ।
बार बार मैं अरज करत हूँ, रैण गई दिन जाय ।
मीरा कहै हरि तुममिलिया बनि, तरसतरस दिनजाय ॥

राग-जोनपुरी

मैं गोविंद गुण गाणा ॥टेक॥
 राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठचां कहूँ जाणा ।
 राणै भेज्या जहर पियाला, इमिरत करि पी जाणा ।
 डबिया में भेज्या भुजंगम, सालिगराम करि जाणा ।
 मीरा तो अब प्रेम दिवाणी, साँवलिया वर पाणा ॥

राग हमीर

कोऊ कछू कहै मन लागा ॥टेक॥
 ऐसी प्रीत लगी मनमोहन ज्यूं सोना में सोहागा ।
 जनम जनम का सोया मनुवाँ सतगुर सब्द सुण जागा ।
 मात पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गयो ज्यूं तागा ।
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर भाग हमारा जागा ॥

राग धानी

मैं गिरधर रंग राती, सैयाँ मैं० ॥टेक॥

पचरंग चोला पहर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती ।

ओह झिरमिटमाँ मिल्यो साँवरो, खोल मिली तनगाती ।

जिनका पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजे पाती ।

मेरा पिया मेरे हीय बसत है, ना कहूँ आती जाती ।

चंदा जायगा सूरज आयगा, जायगी धरणि अकासी ।

पवन पाणी दोनुं ही जायंगे, अटल रहे अविनासी ॥

(४२)

धुन लखनी

तुमरे कारण सब सुख छोड़्या, अब मोहिं क्यूं तरसावौ हो ।

बिरह बिथा लागी उर अंतर, सो तुम आय बुझावौ हो ।

अब छोड़त नहिं बणै प्रभू जी, हंसि कर तुरत बुलावौ हो ।

मीरा दासी जनम जनम की, अंग से अंग लगावौ हो ॥

राग पीलू

तेरो कोई नहिं रोकण हार, मगन होइ मीरा चली ॥टेक॥

लाज सरम कुल की मरजादा सिर से दूर करी ।

मान अपमान टोउ धर पटके निकसी हूँ ज्ञान गली ।

ऊँची अटरिया लाज किवड़िया, निरगुण सेज बिछी ।

पचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली ।

बाजबंद कंडूला सोहै, सिन्दुर मांग भरी ।

सुमिरन थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधक खरी ।

सेज सुखमणा मीरा सोहै, सुभ है आज घरी ।

तुम जाओ राणा घर अपणो, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥

राग प्रभाती

राम मिलण रो घड़ी उमावो,
नित उठ जोऊँ बाटरियां ॥टेक॥
दरस बिना मोहि कछू न सुहावे, जक न पड़त है आँखड़ियां ।
तलफत तलफत बहु दिन बीता, पड़ी बिरह की पाथड़ियां ।
अब तो बेगि दया करि साहिब, मैं तो तुम्हारी दासड़ियां ।
नैण दुखी दरसण कूं तरसै, नाभि न बैठे साँसड़ियां ।
राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखै पासड़ियां ।
लगी लगन छूटण की नाहीं, अब क्यूं कीजै आँटड़ियां ।
मीरा के प्रभु कबर मिलोगे, पुरौ मन की आसड़ियां ।

राग कम्पोद

आली रे मेरे नैणां बाण पड़ी ॥टेका॥

चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी ।

कब की ठाढ़ी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी ।

कैसे प्राण पिया बिनि राखूँ, जीवन मूर जड़ी ।

मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहें बिगड़ों ॥

(४६)

राग कान्हरा

तनक हरि चितवौजी मोरी ओर ॥टेका॥

हम चितवत तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर ।

मेरे आसा चितवनि तुमरी और न दूजी दोर ।

तुमसे हमकूँ कबर मिलोगे, हमसी लाख करोर ।

ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर ।

मीरा के प्रभु हरि अबिनासी, देस्यू प्राण अकोर ॥

(४७)
राग प्रभावती

म्हारो जनम मरन को साथी,
थाँने नहि बिसरुं दिन राती ॥टेक॥
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती ।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ, रोये अंखियाँ राती ।
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुलरा न्याती ।
दोड कर जोडचा अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती ।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यों मदमाती हाथी ।
सतगुरु दस्त धरचो सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती ।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती ॥

(४८)
राग सोरठ

जावा दे री जावा दे, जोगी किसका मीत ॥टेक ॥
सदा उदास रहै मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत ।
बोलत बचन मधुर से मानूं, जोरत नाहीं प्रीत ।
मैं जाणूं या पार निभैगी, छांड़ि चले अधबीच ।
मीरा के प्रभु स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत ॥

(४९)
राग शरंग

आली म्हांने लागे बृन्दावन नीको ॥टेक॥
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोबिन्द जी को ।
निरमल नीर बहत जमना में, भोजन दूध दही को ।
रतन सिंघासन आप बिराजे, मुकुट धरचो तुलसी को ।
कुंजन कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको ॥

(५०)

राग धनाश्री

मेरो मन रामहिं राम रटै रे ॥टेक॥

राम नाम जप लीजे प्राणी, कोटिक पाप करै रे ।

जनम जनम के खतजु पुराने, नामहिं लेत फटै रे ।

कनक कटोरे अमृत भरियो, पीवत कौन नटै रे ।

मीरा कह प्रभु हरि अबिनासी, तन मन ताहि पटै रे ॥

(५१)

भरोसे अपने राम को ॥टेक॥

और नहीं कछु काम के ॥ भरोसे.....

जो कछु मांगूं सो देन गुसइयाँ, वारी जाऊँ ऐसे नाम को ॥

तुमको छोड़ स्वामी कहें जाऊँ ?

किसके आगे शीश नवाऊँ किसके आगे हाथ पसारूँ ?

ऐसो को सनरथ जग माहीं, जाके दिये अघाऊँ ?

दीनबन्धु प्रभु तुम्हरे दरस से, मोक्ष धाम पद पाऊँ ॥

(५३)

दो में एकौ तौ न भई ।

ना हरि भजे न गृह सुख पाये, बृथा विहाय गई ।

ठानी हुती और कछु मन में, औरै आनि ठई ।

अविगतगति कछु समुक्ति परतिनहिं, जो कछु करत दई ॥

अरे मन धीरज काहे न धरै ।

सुभ अरु असुभ करम पूरबले, रती घटै न बढ़ै ।
 होनहार होवै पुनि सोई, चिन्ता काहे करै ।
 पसु पंछी जिव कीट पतंगा, सब की सुद्ध करै ।
 गर्भ बास में खबर लेतु है, बाहर क्यों बिसरै ।
 मात पिता सुत संपति दारा, मोह के ज्वाल जरै ।
 मन तू हंसन से साहिब के, भटकत काहे फिरै ।
 सतगुरु छोड़ और को ध्यावै, कारज इक न सरै ।
 साधुन सेवा कर मन मेरे, कोटिन व्याधि हरै ।
 कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज में जीव तरै ॥

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ॥टेक॥

ता दिन तेरे तन तरवर के, सबै पात झरि जैहैं ॥
 या देही को गर्व न कीजै, स्यार काग गिध खैहैं ॥
 तन गति तीन बिष्ट किर्म ह्वै, नातर खाक उड़ैहैं ॥
 कहँ वह नैन कहाँ वह सोभा, कहँ वह रूप दिखैहैं ॥
 जिन लोगन तें नेह करतु हैं, तेई देखि घिनैहैं ॥
 घर के कहत सवेरे काढ़ो, भूत होय धरि खैहैं ॥
 जिन पूतन को बहु प्रतिपाल्यो, देवी देव मनहैं ॥
 तेई लै बाँस दियो खोपरी में, सीस फेरि बिखरैहैं ॥
 अजहँ मूढ़ करै सतसंगत, संतन में कछु पैहैं ॥
 कहै कबीर सुनो भाइ साधो, आवागमन नसैहैं ॥

(५६)

भजन बिन योंही जनम गँवायो ॥टेक॥

गर्भ बास में कौल कियो थो, तब तोहि बाहर लायो ॥

जठर अगिन ते काढ़ि निकारो, गाँठि बाँधि क्या लायो ॥

बह बह सुबो बैल की नाई, सोइ रह्यो उठ खायो ॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो, चौंरासी भरमायो ॥

(५७)

भीजै चुनरिया प्रेम रस बूंदन ।

आरत साज के चली है सुहागिन, पिय अपने को ढूँढ़न ।

काहे की तोरी बनी है चुनरिया, काहे के लगे चारो फूंदन ॥

पाँच तत्त की बनी है चुनरिया, नाम के लगे फूंदन ।

चढ़िगे महल खुल गई रे किवरिया दास कबीर लगे झूलन ।

(५८)

तलफै बिन बालम मोरा जिया ॥टेक॥

दिन नहिं चैन रैन नहि निदिया ।

तलफ तलफ के भोर किया ॥

तन मन मोर रहट अस डोलै ।

सूनी सेज पर जनम छिया ॥

नैन थकित भये पन्थ न सूझै ।

साईं बेदरदी सुधि न लिया ॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो ।

हरो पीर दुख जोर किया ॥

(५९)

मोरी रंगी चुनरिया, धो धुबिया ॥

जनम जनम के दाग चुनर के,

सतसंग जल से छुड़ा धोबिया ॥

सतगुरु ज्ञान मिले फल चारी,

सबद कै कलप चढ़ा धुबिया ॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो,

गुरु के चरन चित ला धुबिया ॥

(६०)

बीती बहुत रहि थोरी सी ॥टेक॥

खाट पड़े नर झींखन लागे, निकसि प्राण गयो चोरी सी ॥

भाई बंद कुटुंब सब आये, फूंक टियो मानो होरी सी ॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो, सिर पर देत है भौरी सी ॥

मन न रंगाये रंगाये जोगी कपड़ा ॥टेक॥

आसन मारि मन्दिर में बैठे ।

नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा ॥
कनवाँ फड़ाय जोगी जटवा बढ़ाँले ।

दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा ॥
जंगल जाइ जोगी धुनिया रमाँले ।

काम जराय जोगी होइ गैले हिजरा ॥
मथवा मुड़ाय जोगी कपरा रँगौले ।

गीता बाँचिके होइगैले लबरा ॥
कहहि कबीर सुनो भाई साधो ।
जम दरवजवाँ बाँधल जैबे पकरा ॥

(६२)

राग आसावरी-तीन ताल

कर ले सिंगार चतुर अलबेली,

साजन के घर जाना होगा ॥

माटी ओढ़ावन, माटी बिछावन,

माटी से मिल जाना होगा ॥

नहा ले, धो ले, सीस गुंथा ले,

फिर वहाँ से नहि आना होगा ॥

(कबीर)

(६३)

हमकाँ ओढ़ावै, चदरिया, चलती बिरिया ॥

प्राण राम जब निकसन लागे, उलट गई दोउ नैन पुतरिया ।

भीतर से जब बाहर लाये, छूट गई सब महल अटरिया ।

चार जने मिलि खाट उठाइन, रोवतलै चले डगर डगरिया ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, संग चली वह सूखी लकरिया ।

रमैया की दुलहिन लूटा बजार ॥

सुरपुर लूटा, नागपुर लूटत तीन लोक मची हाहाकार ॥
 ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार ॥
 स्त्रिगी की भिगी करि डारी, पारासर के उदर बिकार ॥
 कनफूँका चिदकाशी लूटे, लूटे जोगेसुर करत बिचार ॥
 हमतो बचिगे साहब दयासे, सब्द डोर गहि उतरे पार ॥
 कहत कबीर सुनो भाई साधो, या ठगिनी से रहीहुसियार ।

(६५)

मोकों कहाँ ढूँढ़ता बन्दे, मैं तो तेरे पास में ।
 ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में ।
 ना तो कौन क्रिया कर्म में, नहीं योग बैराग में ।
 खोजी होय तो तुरत मिलिहौं, पल भर की तालास में ।
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वासों की स्वाँस में ॥

(६६)

कैसे दिन कटिहैं जतन बताये जइयौ ॥
 एहि पार गंगा ओहि पार जमुना ।
 बिचवा मड़इया हमका छवाये जइयौ ॥
 अँचरा फारि के कागज बनाइन ।
 अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयौ ॥
 कहत कबीर सुनो भाई साधो ।
 बहियाँ पकरि के रहिया बताये जइयौ ॥

(६७)

साधो, सो सतगुरु मोहि भावै ।
 सत्त प्रेम का भर भर प्याला, आप पिवै मोहि प्यावै ।
 परदा दूर करै आँखिन का, ब्रह्म दरस दिखलावै ॥
 जिस दरस मूं सब लोक दरसै, अनहद सब्द सुनावै ॥
 कहै कबीर ताको भय नाहीं, निर्भय पद परसावै ॥

(६८)

सार गहनी

मन मस्त हुआ तब क्यों बोलै ॥टेक॥

हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार बार बाको क्यों खोलै ।
हलकी थी जब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोलै ।
सुरत कलारी भइ मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले ।
हंसा पाये मान सरोवर, ताल तलैया क्यों डोलै ।
तेरा साहिब है घट माहीं, बाहर नैना क्यों खोलै ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिल गये तिल ओलै ॥

(६९)

साई बिन दरद करेजे होय ।

दिन नाहिं चन रात नाहिं निंदिया, कासे कहूँ दुख रोय ?
आधी रतियाँ पिछले पहिरवा, साई बिना तरस रही सोय ।
कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, साई मिले सुख होय ॥

करम गति टारे नाहि टरी ॥६॥

मुनि बसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, सोधि के लगन धरी ॥
 सीता हरन मरन दसरथ को, वन में बिपति परी ॥
 कहँ वह फंद कहाँ वह पारिधि, कहँ वह मिरग चरी ॥
 सीता को हरि ले गयो रावन, सोने के लंक जरी ॥
 नीच हाथ हरिचंद बिकाने, बलि पाताल धरी ॥
 कोटि गाय नित पुत्र करत नृग, गिरगिट जोनि परी ॥
 पाण्डव जिनके आपु सारथी, तिन पर बिपति परी ॥
 दुरजोधन को गरब घटायो, जदुकुल नास करी ॥
 राहु केतु औ भानु चन्द्रमा, बिधि संजोग परी ॥
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, होने ह्वै के रही ॥

राग आसावरी - दीपचंदी

मन ! तोहि केहि बिधि कर समझाऊं ॥

सोना होय तो सुहाग मँगाऊं, बंक नाल रस लाऊं ।

ज्ञान शब्द की फूंक चलाऊं, पानी कर पिघलाऊं ॥

घोड़ा होय तो लगाम लगाऊं, ऊपर जीन कसाऊं ॥

हैं सवार तेरे पर बैठूं, चाबुक दै के चलाऊं ॥

हाथी होय तो जंजीर गढ़ाऊं, चारो पैर बधाऊं ॥

होय महावत तेरे पै बैठूं, अंकुश लँके चलाऊं ॥

लोहा होय तो ओरण मँगाऊं, ऊपर धुवन धुवाऊं ॥

धवन की घनघोर मचाऊं, जंतर तार खिचाऊं ॥

ज्ञानी होय तो ज्ञान सिखाऊं, सत्य की राह चलाऊं ॥

कहत कबीर सुनो भइ साधो, अमर पुरी पहुँचाऊं ॥

घूँघट का पट खोल रे ! तोको पीव मिलेंगे ।
 घट घट में वह साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे ।
 धन जोबन को गरब न कीजें, झूठा पचरंग चोल रे ।
 सुन्न महल में दियना बारिले, आसन सों मत डोल रे ।
 जाग जुगुत सो रंग महल में, पिय पायो अनमोल रे ।
 कहै कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे ॥

(७३)

होली

ये अखियाँ अलसानी हो, पिय की सेज चलो ॥टेक॥
 खंभ पकरि पतंग अस डोलै, बोलै मधुरी बानी ।
 फूलन सेज बिछाय जो राख्यो, पिया बिना कुम्हिलानी ।
 धीरे पाँव धरौ पलंगा पर, जागत ननद जिठानी ।
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, लोकलाज बिलछानी ॥

रहना नाहिं देस बिराना है ।

यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े धुल जाना है ।

यह संसार काँट की बाड़ी, उलझ पुलझ सर जाना है ॥

यह संसार झाड़ औ झांखड़, आग लगे बरि जाना है ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरुनाम ठिकाना है ॥

(७५)

साधो ब्रह्म अलख लखाया, जब आप आप दरसाया ।
 बीज मद्ध ज्यों वृच्छा दरसै, वृच्छा मद्धे छाया ।
 ज्यों नभ मद्धे सुन्न देखिये, सुन्न अनन्त आकारा ।
 निः अच्छर ते अच्छर जैसे, अच्छर छर विस्तारा ।
 ज्यों रवि मद्धे किरन देखिये, किरन मद्ध परकासा ।
 परमात्म में जीव ब्रह्म इमि, जीव मद्ध तिमि स्वांसा ।
 स्वांसा मद्धे सब्द देखिये, अर्थ सब्द के माहीं ।
 ब्रह्म ते जीव जीव ते मन यों, न्यारा मिला सदा ही ।
 आपहिं वृच्छ बीज अंकूरा, आप फल फल छाया ।
 अनन्ताकार सुन्न नभ आपै, स्वांस शब्द अरथाया ।
 निः अच्छर अच्छर छर आपै, मन जीव ब्रह्म समाया ।
 आत्म में परमात्म दरसै, परमात्म में झाँई ।
 झाँई में परछाँई दरसै, लखै कबीरा साँई ॥

(७६)

बहुरि नहि आवना यह देस ।

जो जो गये बहुरि नहि आये, पठवत नाहि संदेस ।

सुर नर मुनि और पीर औलिया, देवी देव गनेस ।

धरि धरि जनम सबै भरमे हैं, ब्रह्मा, विष्णु महेस ।

जोगी जंगम और सन्यासी, दीगम्बर दरबेस ।

चुंडित मुंडित पंडित लोई, सुरग रसातल सेस ।

ज्ञानी गुनी चतुर औ कबिना, राजा रंक नरेस ।

कोई रहीम कोई राम बखाने, कोई कहै आदेस ।

नाना भष बनाय सबै, मिलि ढूढ़ फिरे चहुँ देस ।

कहै कबीर अंत ना पैहौ, बिन सतगुरु उपदेस ॥

(७७)

माया महौ ठगिनी, अब हम जानी ।
 तिरयुन फांस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी ।
 केसव के कमला होइ बैठी, सिवके भवन भवानी ।
 पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथहू में पानी ॥
 जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी ॥
 काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी ॥
 भक्तन के भक्तिन होइ बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ।
 कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी ॥

(७८)

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया ।
 पाँच तत्त की बनी चुनरिया, सोरह सैं बंद लागे जिया ।
 यह चुनरी मोरे मैके ते आई, ससुरे में मनुवाँ खोय दिया ।
 मलि मलि धोई दाग न छटे ज्ञान को साबुन लाय पिया ।
 कहैं कबीर दाग कब छुटिहैं, जव साहब अपनाय लिया ॥

(७९)

दुलहिन अँगिया काहे न धोवाई ।
 बालपने की मैली अँगिया, विषय दाग परि जाई ।
 बिन धोये पिय रोजत नाहीं, सेज सँ देत गिराई ।
 सुमिरन ध्यान के साबुन करि ले, सत्तनाम दरियाई ।
 दुबिधा के भेद खोल बहुरिया, मन कै मैल धोवाई ।
 चेत करो तीनों पन बीते, अब तो गवन नगिचाई ।
 पालनहार द्वार हैं ठाढ़े, अब काहे पछिताई ।
 कहत कबीर सुनो री बहुरिया, चित अंजन दे आई ।

(८०)

अँधियरवा में ठाढ़ि गोरी का करलू ॥टेका॥
 जब लगि तेल दिया में बाती, येहि अँधोरवा बिछाय घलतू
 मन का पलंग संतोष बिछौना, ज्ञान के तकिया लगाय रखतू
 जरि गया तेल बुझाय गइ बाती, सुरत में मुरत समाय रखतू
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, जोतिया में जोतिया मिलाय रखतू

झिन झिन, झिन झिन, बिनी चदरिया ।

काहे कै ताना, काहे कै भरनी, कौन तार से बिनी चदरिया ;

अंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बिनी चदरिया ;

आठ कँवलदल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया ।

साँई को सीयत मास दस लागै, ठोक ठोक के बिनी चदरिया ।

सो चादर सुन नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीन्हें चदरिया ।

दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीन्हें चदरिया ॥

(८२)

मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥टेक॥

जो सुख पावो नाम भजन में, सो सुख नाहि अमीरी में ।

भला बुरा सब को सुनि लीजै, कर गुजरान गरीबी में ।

प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी में ।

हाथ में कूंडी, बगल में सोंटा, चारों दिसि जागीरी में ।

आखिर यह तन खाक मिलैगा, कहा फिरत मगरूरी में ।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिलै सबूरी में ॥

साधो सहज समाधि भली ।

गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली ।
 जहँ जहँ डोलों सो परिकरमा, जो कछु करों सो सेवा ।
 जब सोवों तब करों दंडवत, पूजों और न देवा ।
 कहों तो नाम सुनों सो सुमिरन, खावें पियों सो पूजा ।
 गिरह उजाड़ एक सम लेखों, भाव मिटावों दूजा ।
 आँख न मूदों कान न रुधों, तनिक कष्ट नहिं धारों ।
 खुले नैन पहिचानों हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारों ।
 सबद निरन्तर से मन लागा, मलिन बासना त्यागी ।
 ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी लागी ।
 कह कबीर यह उनमुन रहनी, सो परगट करि गाई ।
 दुख सुख से कोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समाई ॥

होली

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबहीं मोरी बारी ॥टेक॥
 साज समाज पिया लै आये, और कहरिया चारी ।
 बम्हना बेदरदी अचरा पकरि कै, जोरत गँठिया हमारी ।
 सखी सब पारत गारी ॥

बिधि गति बाम कछु समझ परत ना, बैरी भई महतारी ।
 रोय रोय अँखियाँ मोर पोछत, घरवा से देत निकारी ।
 भई सब कौ हम भारी ॥

गवन कराय पिया लै चाले, इत उत बाट निहारी ।
 छूटत गाँव नगर से नाता, छूटै महल अटारी ।
 करम गति टरै न टारी ॥

नदिया किनारे बलम मोर रसिया, दीन्ह घुंघट पट टारी ।
 थरथराय तन काँपन लागे, काहू न देख हमारी ।
 पिया लै आये गोहारी ॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद लेहु बिचारी ।

अब के गौना बहुरि नहि औना, करि ले भेंट अँकवारी ।

एकबेर मिलिले प्यारी ॥

(८५)

रस गगन गुफा में अजर झरै ।

बिन बाजा झनकार उठै, जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै ।

बिना ताल जहँ कमल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केलि करै ॥

बिन चंदा जियारी दरसै, तहँ तहँ हंसा नजर परै ।

दसवें द्वारे ताली लागी, अलख पुलख जाको ध्यान धरै ।

काल कराल निकट नहि आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै ।

जुगन जुगन की तृषा बुझाती, करम भरम अघव्याधि टरै ।

जुगन जुगन की तृषा बुझाती, करम भरम अघव्याधि टरै ।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय, कबहूँ न मरै ॥

तेरी गठरी में लागे चोर, बटोहिया, का रे सोवे ।
 पाँच पचीस तीन हैं चोरवा, यह सब कीन्हा सोर ।
 जाग सबेरा, बाट अनेरा, फिर नाहिं लागे जोर ।
 भव सागर इक नदी बहत है, बिन उतरे जीव बोर ।
 कहैं कबीर, सुनो भाई साधो, जागत कीजें भोर ॥

(८७)

साधो मन का मान तियागो ॥

काम क्रोध संगत दुर्जन की, ता तें अहि निसि भागो ।
 सुख दुख दोनों सम करि जानै, और मान अपमाना ।
 हर्ष सोक तें रहै अतीता, तिन जग तत्व पिछाना ।
 अस्तुति निंदा दोऊ त्यागो, खोजै पद निरबाना ।
 जन नानक यह खल कठिन है, किन्हूँ गुरमुख जाना ॥

मन की मनहीं माँहि रही ।

ना हरि भजे, न तीरथ सेवे, चोटी काल गही ।
 दारा मीत पूत रथ संपति, धन जन पूर्ण मही ।
 और सकल मिथ्या यह जानो, भजन राम सही ।
 फिरत फिरत बहुते जुग हास्यो, मानस देह लही ।
 नानक कहत मिलन की बिरिया, सुमिरत कहा नही ॥

(८९)

काहे रे बन खोजन जाई !

सर्व निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ।
 पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकर माँहि जस छाई ।
 तैसेही हरि बसै निरंतर, घट ही खोजो भाई ।
 बाहर भीतर एकै जानो, यह गुरु ज्ञान बताई ।
 जन नानक बिन आपा चीन्हें, मिटै न भ्रम की काई ॥

जो नर दुख में दुख नहि मानै ।

सुख सनेह अरु भय नहि जाके, कंचन माटी जानै ।

नहि निन्दा नहि अस्तुति जाके, लोभ मोह अभिमाना ।

हर्ष सोक तें रहै नियारो, नाहि मान अपमाना ।

आसा मनसा सकल त्यागि कै, जग तें रहै निरासा ।

काम क्रोध जेहि परसै नाहिन, तेहि घट ब्रह्म निवासा ।

गुरु किरपा जेहि नरपैकीन्ही, तिन यहजुगति पिछानी ।

नानक लीन भयो गोबिंद सों, ज्यों पानी संग पानी ॥

सब कछु जीवत को व्यौहार ।

मात पिता भाई सुत बाँधव, अरु पुनि गृह की नार ।
 तन तें प्रान होत जब न्यारे, टेरत प्रेत पुकार ।
 आध घरी कोऊ नहिं राखै, घर तें देत निकार ।
 मृग-तृस्ना ज्यों जग रचना यह, देखो हृदे बिचार ।
 कहु नानक भजु राम नाम नित जा तें होत उधार ॥

(९२)

अब मैं कौन उपाय करूँ ॥टेक॥

जेहि बिधि मन को संसय छुटै, भव-निधि पार परूँ ।
 जनम पाय कछु भलो न कीन्हो, ता तें अधिक डरूँ ।
 गुरु मत सुन कछु ज्ञान न उपज्यो, पसुवत उदर भरूँ ॥
 कहु नानक प्रभु बिरद पिछानो, तब हौं पतित तरूँ ॥

(९३)

जा में भजन राम को नाहीं ।

तेहि नर जनम अकारथ खोयो, यह राखो मन माहीं ।

तीरथ करै बर्त पुनि राखै, नहि मनुवा बस जा को ।

निफल धर्म ताहि तुम मानो, साँच कहत मैं या को ।

जैसे पाहन जल में राख्यो, भेदै नहि तेहि पानी ।

तैसे ही तुम ताहि पिछानो, भगतिहीन जो प्राणी ।

कलि में मुक्ति नाम तें पावत, गुरु यह भेद बतावै ।

कहु नानक सोई नर गरुवा, जो प्रभु के गुन गावै ॥

(९४)

यह मन नेक न कह्यो करै ।
 सीख सिखाय रह्यो अपनी सी, दुरमति तें न टरै ।
 मद माया बस भयो बावरो, हरि जस नहिं उचरै ।
 करि परपंच जगत के डहकै, अपनो उदर भरै ।
 स्वान पूछ ज्यों होय न सूधो, कह्यो न कान धरै ।
 कहु नानक भजु रामनाम नित, जा तें काज सरै ॥

(९५)

राग दुर्गा-ताल तेवरा

रे मन ! राम सों कर प्रीत ॥टेक॥

श्रवण गोविन्दगुण सुनो अरु गाउ रसना गीत ।

कर साधु-संगत सुमिरि माधो होय पतित पुनीत ।

काल व्याल ज्यों परचो डोलै मुख पसारे मीत ।

आजकल पुनि तौहि ग्रसिहै समझ राखो चीत ।

कहे नानक राम भज ले जात अवसर बीत ॥

(९६)

राम सुमिर राम सुमिर एही तेरो काज है ॥टेका॥
 माया को संग त्याग, हरि जू की सरन लाग ।
 जगत सुख मान मिथ्या, झूठो सब साज ह ॥
 सुपने ज्यों धन पिछान, काहे पर करत मान ।
 बारू की भीत तसे, बसुधा को राज है ॥
 नानक जन कहत बात, बिनसि जैहै तेरो गात ।
 छिन छिन करि गयो काल्ह, तसे जात आज है ॥

(९७)

जगत में झूठी देखी प्रीति ।
 अपने ही सुख सों सब सब लाग, क्या दारा क्या मीत ।
 मेरो मेरो सभी कहत हैं, हित सो बाँध्यो चीत ।
 अंतकाल सगी नहि कोऊ, यह अचरज की रीत ।
 मन रख अजहूँ नहि समुझत, सिख दे हारचो नीत ।
 नानक भव जल पार परै, जो गावे प्रभु के गीत ॥

(१८)

जाके प्रिय न राम बैदेही ।

सो छांड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।

तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी ।

बलिगुरुतज्यो, कंत ब्रजबनितनि, भये मुदमंगलकारी ।

नाते नेह राम के मनियत, सुहृय सुसेव्य जहाँ लौं ।

अंजन कहा आँखि जेहि फूटे बहुतक कहाँ कहाँ लौं ।

तुलसी सो सब भांति परम हित, पूज्य प्राण ते प्यारो ।

जासों होय सनेह राम पद, अंतो मतो हमारो ॥

मन पछितैहै अवसर बीते ।

दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम बचन अरु ही ते ।
 सहसबाहु दस बदन आदि नृप, बचे न काल बली ते ।
 हम हम करि धन धाम संवारे, अंत चले उठि रीते ।
 सुत बनितादि जानि स्वारथ रत, न करुनेह सबही ते ।
 अंतहु तोहि तजेंगे पामर, तू न तजै अबही ते ।
 अब नाथहि अनुराग जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते ।
 बुझै न काम अगिनितुलसी कहूँ, विषय भोग बहु घी ते ॥

(१००)

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।

राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं ।
 पायो नाम चारु चिन्तामनि, उर कर ते न खसैहौं ।
 स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहौं ।
 परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
 मन मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति पद कमल बसैहौं ॥

(१०१)
ऐसी मूढ़ता या मन की ।

परिहरि राम भक्ति सुरसरिता, आस करत ओसवन की ।
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घनकी ।
नहिं तहँ सीतलता न वारि, पुनि हानि होत लोचन की ।
ज्यों गज काँच विलोकि सेन जड़ छांह आपने तन की ।
दूत अति आतुह अहार बस, छति बिसारि आनन की ।
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि, जानत हौ गति जन की ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥

(१०२)

लोचन रहे बैरी होय ।

जान-बूझ अकाज कीनों, गये भू में गोय ॥
अविगत जु तेरी गति न जानी, रह्यो जागत सोय ॥
सबै छबि की अवधि में है, निकसिगये ढिग होय ।
करम हीन में पायो हीरा, दियो पल में खोय ।
दास तुलसी राम बिछुरे, कहो कैसी होय ॥

कबहुंक हों यहि रहनि रहौंगो ।

श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें, संत सुभाव गहौंगो ।

जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।

परहित निरत निरंतर मन क्रम, बचन नेम निबहौंगो ।

परुषबचन अतिदुसह स्रवनसुनि, तेहि पावकन दहौंगो ।

बिगत मन सम सीतल मन परगुन, नहिं दोष कहौंगो ।

परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।

तुलसिदास प्रभु यहिपथरहि, अविचल हरिभक्तिलहौंगो॥

— — — — —

केसव, कहि न जाइ का कहिये ।

देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिये ।

सून भीति पर चित्र रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।

धोये मिटै न मरे भीति दुख, पाइय इहि तन हेरे ।

रवि कर नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि नाही ।

बदन हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै ।

तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ।

(१०५)

यह बिनती रघुबीर गुसाई ।

और आस विश्वास भरोसो, हरौ जीव जड़ताई ।

चहौं न सुगति, संपत्ति कछु, रिधि सिधि बिपुल बढ़ाई ।

हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ै, अनुदिन अधिकाई ।

कुटिल करम लै जाइ मोहिं, जहँ जहँ अपनी बरियाई ।

तहँ तहँ जनि छिन छोह छाड़िये, कमठ अंड की नाई ।

या जग में जहँ लगि या तनु की, प्रीति प्रतीति सगाई ।

ते सब तुलसिदास प्रभु हीं सों, होहिं सिमिट इक ठाई ॥

जाऊं कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।

काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पियारे ।
कौन देव कराइ विरद हित, हठि हठि अधम उधारे ।
खग मृग व्याध पषान विटपजड़, जवन सुवन सुरतारे ।
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया विवस बिचारे ।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे ॥

(१०७)

मैं हरि पतित पावन सुने ।

मैं पतित तुम पतित पावन, दोउ बानक बने ।
व्याध गनिका गज अजाबिल लाखि निगमनि भने ।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ।
जानि नाम अजानि लीन्हें, नरक जमपुर मने ।
दास तुलसी सरन आयो, राखिये अपने ॥

(१०८)

मेरो मन हरिजू हठ न तजै ।

निसिदिन नाथ, देऊं सिख बहु विधि, करत सुमाउ निजै ।

ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै ।

ह्वै अनुकूल विसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै ।

लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यों जहं तहं सिर पदत्रान बजै ।

तदपि अधम विचरत तेहिं मारग कबहुं न मूढ़ लजै ।

हौं हार्यौ करि जतन विविध विधि अतिसै प्रबल अजै ।

तुलसिदास बस होई तबहिं जब प्रेरक प्रभु वरजै ॥

(१०९)

सुन मन मूढ़, सिखावन मेरो ॥

हरिपद विमुख लह्यो न काहु सुख, सठ यह समुझि सवेरो ।
 विछुरे ससि रवि मन नैननि तें, पावत दुख बहुतेरो ।
 भ्रमत लमिit निसि दिवस गगन महं, तह रिपु राहु बड़ेरो ।
 जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुं पुर सुजस घनेरो ।
 तजे चरन अजहुं न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ।
 छुटै न विपति भजै बिनु रघुपति, लुति सन्देह निबेरो ।
 तुलसिदास सब आस छांड़ि करि, होहु राम कर चेरो ॥

(११०)

माधव, मोह पास क्यों टूटै ।

बाहर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर गूँथि न छूटै ।
 घृत पूरन कराह अंतरगति, ससि प्रतिबिंब दिखावै ।
 ईंधन अनल लगाय कल्पसत, औँटत नास न पावै ।
 तरु कोटर महँ बस विहंग तरु, काटै मरै न जैसे ।
 साधन करिय विचार हीन मन, सुद्ध होइ नहिँ तैसे ।
 अंतर मलिन, बिषय मन अति, तन पावन करिय पखारे ।
 मरइ न उरग अनक जतन, बलमीकि विविध विधि मारे ।
 तुलसिदास हरि गुरु करुना बिनु, विमल विवेक न होई ।
 बिनु विवेक संसार घोर निधि, पार न पावै कोई ॥

(१११)

रघुबर, रावरि यहै बड़ाई ।

निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकारि ।
 थके देव साधन करि सब, सपनेहुँ नहिं देत दिखाई ।
 केवट कुटिल भालु कपि कौनप, कियो सकल संग भाई ।
 मिलि मुनि वृन्द फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई ।
 बारहिं बार गोध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई ।
 स्वान कहें तें कियो पुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाई ।
 तिय निंदक मतिमंद प्रजा, रज निज नय नगर बसाई ।
 यहि दरबार दीन को आदर, रीति सखा चलि आई ।
 दीन दयालु, दीन तुलसी की, काहु न सुरति कराई ॥

(११२)

बैठे हैं राम लखन अरु सीता ।

पंचवटी बर परन कुटी तर, कहैं कछु कथा पुनीता ।
 कपटकुरंगकनकमनि मयलखि, प्रियसों कहति हैं सिहें सिवाला ।
 पाये पालिबे जोग मंजु मृग, मारेहु मंजुल छाला ।
 प्रिया बचन सुनि बिहैंसि प्रेमबस, गर्वाहि चाप सर लीन्हें ।
 चल्यो भाजि फिरि फिरि चितवत, मुनि मख रखवारे चीन्हें ।
 सोहति मधुर मनोहर मूरति, हेम हरिन के पाछे ।
 धावनि, नवनि, बिलोकनि, विथकनि, बसै तुलसी उर आछे ॥

माधव, मो समान जग माँहीं ।

सब बिधि हीन मलीन दीन अति, लीन विषय कोउ नाहीं ।
तुम सब हेतु रहित कृपालु आरत हित ईस न त्यागी ।
मैं दुख सोक बिकल कृपालु केहि कारन दया न लागी ।
नाहिंन कछु औगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना ।
ग्यान भवन तनु दियेहु नाथ, सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ।
बेनु करील, श्रीखंड बसंतहि दूषन मृषा लगावै ।
सार रहित हतभाग्य सुरभि, पल्लव सो कहु किमि पावै ।
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ विचार जिय मोरे ।
तुलसिदास प्रभु मोह शृंखला, छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥

रघुपति भगति करत कठिनाई ।

कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोहि जेहि बनि आई ।

जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।

सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहँ गज भारी ।

ज्यों सर्करा मिलै सिकतामहँ, बल तें न कोउ विलगावै ।

अति रसग्य सुच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ।

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी ।

सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी ।

सोक मोह भय हरष दिवस, निसि देस काल तहँ नाहीं ।

तुलसिदास यहि दसाहीन संशय निरमूल न जाहीं ॥

ऐसो को उदार जग माहीं ।

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं ।

जो गति जोग बिराग जतन करि, नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।

सो गति देत गोध सबरो कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानी ।

जो संपति दससीस अरपि करि, रावन सिव पहुँ लीन्ही ।

सो संपदा बिभीषन कहँ, अति सकुच सहित हरि दीन्हीं ।

तुलसिदास सब भांति सकल सुख, जो चाहसि मन मेरो ।

तौ भजु राम, काम सब पूरन, करै कृपानिधि तेरो ।

जानत प्रीति रीति रघुराई ।

नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह सगाई ।
 नेह निबाहि देह तजि दसरथ, कीरति अचल चलाई ।
 ऐसेहुँ पितु तें अधिक गोध पर, ममता गुन गरुआई ।
 तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि, प्रान प्रिया बिसराई ।
 रन परचो बंधु विभीषन ही को, सोच हृदय अधिकाई ।
 घर गुश्रोग्रह प्रिय सदन सासुरे, भई जब जहँ पहुनाई ।
 तब तहँ कहि सेवरीके फलनिकी रुचि माधुरी न पाई ।
 सहज सरूप कथा मुनि बरनत, रहत सकुचि सिर नाई ।
 केवट मीत कहे सुख मानत, बानर बंधु बड़ाई ।
 प्रेम कनौड़ो राम सों प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई ।
 तेरो रिनी कह्यौ हौं कपि सों, ऐसी मानहि को सेवकाई ।
 तुलसी राम सनेह सील लखि, जो न भगति उर आई ।
 तौ तोहिं जनम जाय जननी जड़, तनु तरुनता गँवाई ॥

अजहुँ न निकसै प्राण कठोर ॥टेक॥

दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर ।
चारि पहर चारों युग बीते, रैनि गँवाई भोर ।
अवधि गई अजहुँ नहिं आये, कतहुँ रहे चितचोर ।
कबहुँ नैन निरखि नहिं देखे, मारग चितवत तोर ।
दाह ऐसे आतुर बिरहणि, जैसे चंद चकोर ॥

(११८)

धनि मोरि आज सुहागिन घड़िया ॥टेक!!

आज मोरे अँगना सन्त चलि आये, कौन करौं मिहमनिया ।
निहुरि निहुरि मैं अँगना बुहारौं, मातो मैं प्रेम लहरिया ।
भाव कै भात प्रेम कै फुलका, ज्ञान की दाल उतरिया ।
दूलनदास के साई जगजीवन, गुरुके चरन बलिहरिया ॥

बाजत नाम नौबति आज ।

हैं सावधान सुचित्त सीतल, सुनहु गैब अवाज ।
सुखकंद अनहद नाद सुनि, दुख दुरित क्रम भ्रम भाज ।
सतलोक बरसो पानि, धुनि निर्बान यहि मन बाज ।
तोइँ चेत चित दै प्रेम मगन, अनंद आरति साज ।
घर राम आये जानि, भइनि सनाथ बहुरा राज ॥

(१२०)

अरे मन देहु तजि मतवारि ।

जे जे आये जगत महँ इहि, गये ते ते हारि ।
नाहि सुमिरचो नाम काँ, सब गयो काम बिगारि ।
आपु काँ जिन बड़ा जान्यो, काल खायो मारि ।
जानि आपुहिं छोट जग, रहि रहो डोरि सँभारि ।
बैठि कै चौंगान निरखहु, रूप छवि अनुहारि ।
रहौ थिर सतसंग बासी, देहु सकल बिसारि ।
जगजीवन सतगुरु कृपा करि, लेहिं सबै सँवारि ॥

अब तेरी सरन आयो राम ।

जब सुनिया साध के मुख, पतित-पावन नाम ।

यही जान पुकार कीन्ही, अति सतायो काम ।

बिषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम ॥

(१२२)

अरे मन समुझि कर पहिचान ।

को तैं अहसि कहाँ तैं आयसि, काहे भर्म भुलान ।

सुधि सँभारु बिचार करिकै, बूझु पाछिल ज्ञान ।

नात यहि दुइ चार दिन का, अचल नहिं अस्थान ।

लोक गढ़ यहु कोट काया, कठिन माया बान ।

लाग सब के बचे कोउ नहिं, हरयो सब को ध्यान ।

खबरदार बेखबर हो नहिं, ओट नाम निरबान ।

जगजीवन सतगुरु राखि लैहैं, चरन रहु लपटान ॥

राग बिहाग-तीन ताल

नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?

क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा, सत्य वचन क्यों छोड़ दिया ?

झूठे जग में दिल ललचाकर, असल वतन क्यों छोड़ दिया ?

कौड़ी को तो खूब सम्हाला, लाल रतन क्यों छोड़ दिया ?

जिहि सुमिरनते अतिसुख पावै सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया ?

खालस इक भगवान भरोसे, तन मन धन क्यों न छोड़ दिया ?

(१२४)

राग भैरवी-तीन ताल

मंगल मंदिर खोलो, दयामय ! मंगल मंदिर खोलो ।

जीवनवन अति वेगे वटाव्युं, द्वार ऊभो शिशु भोलो ।

तिमिर गयुं ने ज्योति प्रकाश्यो, शिशु ने उरमाँ लो लो ।

नाम मधुर तम रटचो निरंतर, शिशु सह प्रेमे बोलो ।

दिव्यतृषातुर आव्यो बालक, प्रेम-अमीरस ढोलो ॥

अब हम अमर भये, न मरेंगे ।

या कारन मिथ्यात दियो तज, क्योंकर देह धरेंगे ।
राग दोष जग बंध करत है, इनको नाश करेंगे ।
मरचो अनंत काल तें प्राणी, सो हम काल हरेंगे ।
देह बिनाशी, हूँ अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे ।
नासी नासी हम थिरवासी, चोखे हूँ निखरेंगे ।
मरचो अनंत बार बिन समझचो, अब सुखदुख बिसरेंगे ।
आनन्दघन निपटनिकट अक्षर दो नहिं सुमिरे सो मरेंगे ॥

राग आसावरी-द्रुत एक ताल

अन्तर मम विकसित करो अन्तरतर हे,
निर्मल करो, उज्ज्वल करो, सुन्दर करो हे ।
जाग्रत करो, उद्यत करो, निर्भय करो हे,
मंगल करो, निरलस, निःसंशय करो हे ।
युक्त करो हे सबार संगे, मुक्त करो हे बंध,
संचार करो सकल कर्म शान्त तोमार छंद ।
चरणपद्मे मम चित्त निष्पंदित करो हे,
नंदित करो, नंदित करो, नंदित करो हे ॥

(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

(१२५)
राग खमाज-धुलाली

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड पराई जाणे रे ।
 परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे ।
 सकल लोकमाँ सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे ।
 वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे ।
 समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे ।
 जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे ।
 मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमाँ रे ।
 रामनाम शुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तन माँ रे ।
 वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निर्वाया रे ।
 भणै नरसैंयो तेनुं दरसन करताँ, कुल एकोतेर तार्या रें ॥

राग कौशिया—तीन ताल

प्रभुजी ! तुम चंदन हम पानी ।
जाकी अंग अंग बास समानी ।
प्रभुजी तुम घनवन हम मोरा ।
जैसे चितवत चंद चकोरा ।
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती ।
जाकी जोति बरै दिन राती ।
प्रभुजी, तुम मोती हम धागा ।
जैसे सोनहि मिलत सुहागा ।
प्रभुजी, तुम स्वामी हम दासा ।
ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

राग बहार-ताल विलंबिन तीन ताल

अब हौं कासो बैर करौं ।
 कहत पुकारत प्रभु निज मुख तें, “घट घट हौं बिहरौं ।”
 आपु समान सबै जग लेखौं, भक्तन अधिक डरौं ।
 श्री हरिदास कृपा ते हरि की, नित निर्भय बिचरौं ॥

(१३०)

संत परम हितकारी !
 जग में, संत परम हितकारी ।
 प्रभुपद प्रगट करावत प्रीती, भरम मिटावत भारी ।
 परम कृपालु सकल जीवन पर, हरि सम सब दुखहारी ।
 त्रिगुणातीत फिरत तन त्यागी, रीत जगत ते न्यारी ।
 ब्रह्मानन्द संतन की सोवत, मिलत है प्रकट मुरारी ॥

राग कालिंगड़ा-तीन ताल

प्राणि ! तू हरि सों डर रे, तू क्यों रहा निडर रे ।
गाफिल मत रह चेत सबेरा, मन में राख फिकर रे ।
जो कुछ करै बेग ही कर ले, सिर पर काल जबर रे ।
काले गोरे तन पर भूला, तन जायेगा जर रे ।
यम के दूत पकड़ कर घीसैं, काढ़ें बहुत कसर रे ।
हरिभज हरिभज हरिभज प्राणी, हरि को भजन तू कर रे ।
ब्रजकिशोर प्रभुपदनौका चढ़ि भजसागर को तर रे ॥

(१३२)

बसुरिया काहे गुमान भरी ।
जाति सिफत सब तोरी जानौं, मधुबन की लकरी ।
जब ते तू हरि के मुख लागी, बाजत बिरह भरी ।
सूर श्याम प्रभु अब का करिये, अधरन लागि तरी ॥

(१३३)

डसो री मोहिं श्याम भुजंगम कारे ।
 मोहन मुख मुसकान मनहुँ विष, जाति मरे सो मारे ।
 फुरै न मंत्र गति नाहीं, चले गुनी गुन डारे ।
 प्रेम प्रीत विष हिरदे लागी, डारत है तनु जारे ।
 निर्विष होत नहिं कैसेहु करि, बहुत गुनी पति हारे ।
 सुर श्याम मारुड़ी बिनको, मोसिर गाडू टारे ॥

(१३४)

चरन कमल बंदौ हरि राई ।
 जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाई ।
 बाहिरौ सुनै गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई ।
 सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौ तिहि पाई ॥

बहुत दिन जीवौ पपीहा प्यारो ।

बासर रैन नाँव लै बोलत, भल बिरह ज्वर कारो ।

आपु दुखित पर दुखित जानि जिय, चातक नाँव तुम्हारो ।

देखो सकल बिचारि सखी जिय, बिछुरन कौ दुख न्यारो ।

जाहि लगै सोई पै जानै, प्रेम बान अनियारो ।

सूरदास प्रभु स्वाति बूंद लगि, तज्यो सिन्धु करि खारो ॥

(१३६)

अविगत गति कछु कहत न आवै ।

ज्यों गुंगे मीठे फल कौ रस, अंतरगत ही भावै ।

परम स्वाद सबही सु निरंतर, अमित तोष उपजावै ।

मन बानी कौ अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ।

रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु, निरालंब कित धावै ।

सब बिधि अगम बिचारहि तातें सूर सगुन पद गावै ॥

सरन गये को को न उबारचो ।

जब जब भीर परी संतन कौं, चक्र सुदर्शन तहाँ सँभारचौ ।
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौं, दुर्वासा कौं क्रोध निबारचौ ।
ग्वालन हेत धरचो गोबर्धन, प्रकट इन्द्रको गर्व प्रहारचौ ।
करी कृपा प्रह्लाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मारचौ ।
नरहरिरूप धरचो करुनाकर, छिनकमाँहि उरन खनि बिदारचौ ।
ग्राह ग्रसत गज कौं जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टारचौ ।
सूर स्याम बिनु और करै कौ, रंगभूमि में कंस पछारचौ ।

जैसे तुम गज कौ पाँव छुड़ायौ ।
अपने जन कों दुखित जानि कै, पाउँ पियादे धायौ ।
जहँ जहँ गाढ़ि परी भक्तन कौं, तहँ तहँ आपु जनायौ ।
भक्ति हेत प्रह्लाद उबारयो, द्रौपदि चीर बढ़ायौ ।
प्रीति जानि हरि गये बिदुर कैं नामदेव घर छायौ ।
सूरदास दिज दीन सुदामा, तिहि दारिद्र नसायौ ॥

(१३९)

रे मन गोविन्द के ह्वै रहियै ।
इहि संसार अपार बिरत ह्वै जम की त्रास न सहियै ।
दुख सुख कीरति भाग आपने, आइ परै सो गहियै ।
सूरदास भगवंत भजत करि अंत बार कछु लहियै ॥

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ।

ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं ।

या देही कौ गरब न करिये स्यार काग गिध खैहैं ।

तीननि में तन कृमि कै बिष्टा, कै ह्वै खाक उड़हैं ।

कहँ वह नीर कहाँ वह सोभा, कहँ रंग रूप दिखैहैं ।

जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं ।

घर के कहत सबारे काढ़ी, भूत होय धरि खैहैं ।

जिन पुत्रनिहि बहुत प्रतिपाल्यो, देवी देव मनैहैं ।

तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैं ।

अजहँ मूढ़ करौ संतसंगति, संतनि में कछु पैहैं ।

नरवपु धारि नाहिं जन हरि कौं, जम की मार सो खैहैं ।

सूरदास भगवंत भजन बिनु बृथा सु जनम गवैहैं ॥

(१४१) ,

नहिं अस जनम बार बार ।

पुरबलों धौं पुण्य प्रगट्यौ, लह्यो नर अवतार ।

घटै पल पल बड़े छिन छिन जात लागि न बार ।

धरनि पत्ता गिरि परै तें फिरि न लागै डार ।

भय उदधि जम लोक दरसै निपट ही अँधियार ।

सूर हरि को भजन कर करि उतरि पल्ले पार ॥

(१४२)

हमारे निर्धन के धन राम ।

चोर न लेत, घटत नहिं कबहूँ, आवत गाढ़े काम ।

जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसो हरि नाम ।

बैकुण्ठनाथ सकल सुखदाता, सूरदास सुख धाम ॥

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
 तुम सों कहाँ छिपी करुनामय, सब के अंतरजामी ।
 जो तन दियो ताहि बिसरायौ, ऐसो नोन हरामी ।
 भरि भरि द्रोह बिषै कौं धावत, जैसे सूकर ग्रामी ।
 मुनि सतसंग होत जिय आलस, बिषयिनि संग बिसरामी ।
 श्रीहरिचरण छांड़ि बिमुखनिकी निसिदिन करत गुलामी ।
 पापी परम अधम अपराधी, सब पतितनि में नामी ।
 सूरदास प्रभु अधम उधारन सुनिये श्रीपति स्वामी ॥

(१४४)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
 जैसे उड़ि जहाज कौं पच्छी, फिरि जहाज पर आवै ।
 कमल नैन कौ छांड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै ।
 परम गंग कौं छाड़ि पियारौ, दुरमति कूप खनावै ।
 जिहि मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल भावै ।
 सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ॥

(१४५)

अब मैं नाच्यौ बहुत गपाल ।

काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।

महामोह के नूपुर बाजत, निंदा सब्द रसाल ।

भ्रम भोयौ मन भयो पखावज, चलत असंगत चाल ।

तृष्णा नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल ।

माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल ।

कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहि काल ।

सूरदास की सबै अबिद्या दूरि करौ नंदलाल ॥

(१४६)

हमारी तुमकौ लाज हरी ।

जानत हौ प्रभु अंतरजामी, जो मोहि माँझ परी ।

अपने औगुन कहँ लौं बरनौं, पल पल घरी घरी ।

अति प्रपंच की मोट बाँधिकै अपने सीस धरी ।

खेवनहार न खेवट मेरे, अब मो नाव अरी ।

सूरदास प्रभु तव चरननि की आस लागि उबरी ॥

(१४७)

जैसे राखहु तैसे रहों ।

जानत हौ दुख सुख सब जन के, मुख करि कहा कहों ।
 कबहुँक भोजन लहों कृपानिधि, कबहुँक भख सहों ।
 कबहुँक चढ़ौ तुरंग महागज, कबहुँक भार बहों ।
 कमल नयन घन स्याम मनोहर अनुचर भयौ रहों ।
 सूरदास प्रभु भक्त कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहों ॥

(१४८)

राग कान्हरी

बड़ी है राम नाम की ओट ।

सरन गये प्रभु काढ़ि देत नहि, करत कृपा कै कोट ।

बैठत सब सभा हरि जू की, कौन बड़ो को छोट ।

सूरदास पारस के परसे मिटति लोह की खोट ॥

(१४९)

राग सौरठ

क्यों दासी सुत के पग धारे ।

भीषम करन द्रोण मंदिर तजि मम गृह तजे मुरारे ।

सुनियत हीन दीन बृषली सुत जाति पाँति तें न्यारे ।

तिनक जाइ कियो तुम भोजन जडुकुल लाजनि मारे ।

हरिजू कह्यौ सुनौ दुरजोधन, सत्य सुवचन हमारे ।

सोइ निरघन सोइ कृपन दीन है, जिन मम चरन बिसारे ।

तुम साकट वै भगत भागवत, राग द्वेष तें न्यारे ।

सूरदास प्रभु नन नंदन कहैं हम ग्वालनि जुठिहारे ॥

(१५०)

राग सारंग

अब कछु नाहिंन नाथ रह्यौ ।

सकल सभा में पैठि दुसासन अंबर आनि गह्यौ ।

हारि सकल भंडार भूमि आपुन जन वास लह्यौ ।

एकै चीर हुतौ मेरे पर सो इन हरन चह्यौ ।

हा जगदीस राखि इहि अवसर प्रगट पुकारि करचौ ।

सूरदास उमंगे दोउ नैना, सिंधु प्रवाह बह्यौ ॥

(१५१)

राग मलार

आज जो हरिहि न सस्त्र गहाऊँ ।

तौ लाजौं गंगा जननी कौं सांतनु सुत न कहाऊँ ।

स्यंदन खंडि महारथि खंडौं कपिध्वज सहित गिराऊँ ।

पांडव दल सन्मुख ह्वै धाऊँ सरिता रुधिर बहाऊँ ।

इती न करौं सपथ तौ हरि की छत्रिय गतिहि न पाऊँ ।

सूरदास रतभूमि विजय बिनु जियत न पीठि दिखाऊँ ॥

राग सारंग

भावी काहू सो न टरै ।

कहँ वह राहु कहाँ वे रवि ससि, आनि संजोग परै ।

मुनि बशिष्ठ पंडित अतिज्ञानी, रचिपचि लगनधरै ।

तातमरन सियहरन रामबन, बपु धरिबिपति भरै ।

रावन जीति कोटि तैंतीसों, त्रिभुवन राज करै ।

मृत्युहि बाँधि कूप में राखै, भावी बस सो मरै ।

अरजुन के हरि हुते सारथी, सोऊ बन निकरै ।

द्रुपद सुता को राज सभा, दुस्सासन चीर हरै ।

हरीचंद सो को जगदाता, सो घर नीच भरै ।

जौ गृह छांड़ि देस बहु धावै, तउ वह संग फिरै ।

भावी के बस तीन लोक हैं, सुर नर देह धरै ।

सूरदास प्रभु रची सु त्वहैं, को करि सोच मरै ॥

राग बिलावल

हम भक्तनि के भक्त हमारे ।

सुनि अरजुन परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरत न टारे ।

भक्तनि काज लाज जिय धरि कै, पाइ पियादे धाऊँ ।

जहँ जहँ भीर परै भक्तन कौं, तहँ तहँ जाइ छुड़ाऊँ ।

जो भक्तनि सों बैर करत है, सो बैरी निज मेरो ।

देखि बिचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरो ।

जीतें जीति भक्त अपने के, हारें हारि बिचारौं ।

सूरदास सुनि भक्त बिरोधी, चक्र सुदर्शन जारौं ॥

राग मलार

वा पट पीत की फहरानि ।

कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहि बिसरति वह बानि ।

रथ ते उचरि चलनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटानि ।

मानौ सिंह सैल तें निकस्यो, महा मत्त गज जानि ।

जिन गोपाल मेरो प्रन राख्यो, मेदि वेद की कानि ।

सोई सूर सहाइ हमारे, निकट भये हैं आनि ॥

(१५५)

राग कंदारौ

जग में जीवत ही को नातौ ।

मन बिछुरे तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ ।

मं मेरी कबहूँ नहि कीजै, कीजै पंच सुहातौ ।

बिषयासक्त रहत निसि बासर, सुख सियरौ दुख तातौ ।

साँच झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखौ खातौ ।

सूरदास कछु थिर न रहैगो, जो आयौ सो जातौ ॥

राग धनाश्री

सबै दिन गये बिषय के हेत ।
 तीनों पन ऐसे ही बीते, केस भये सिर सेत ।
 आँखिन अंध स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत ।
 गंगाजल तजि पियत कूपजल, हरि तज पूजत प्रेत ।
 मन बच क्रम जौ भजै श्याम को, चारि पदारथ देत ।
 ऐसो प्रभू छांड़ि क्यों भटकै, अजहू चेत अचेत ।
 राम नाम बिन क्यों छूटैगो, चन्द्र गहै ज्यों केत ।
 सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत ॥

राग धनाश्री

अब मैं जानी देह बुढ़ानी ।

सीस पाउँ कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी ।

आन कहत आनै कहि आवत, नैन नाक बहै पानी ।

मिटगइ चमकदमक अंगअंगकी, मति अरुदृष्टि हिरानी ।

नाहि रही कछु सुधि तनमन की, भई जु बात बिरानी ।

सूरदास अब होत बिगूचनि भजि लै सारंगपानी ॥

(१५८)

राग धनाश्री

मन तोसौं किती कही समुझाई ।

नंद नंदन के चरन कमल भजि तजि पाखंड चतुराई ।

सुख संपति दारा सुत हय गय छोट सबै समुदाई ।

छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु अंत नाहि संग जाई ।

जनमत मरत बहुत जुग बीते अजहूँ लाज न आई ।

सूरदास भगवंत भजन बिनु जैहँ जनम गवाँई ॥

राग कल्याण

भक्ति बिनु बैल विराने ह्वैहौ ।

पाउँ चारि सिर सृंग गुंग मुख, तब कैसे गुन गैहौ ।

चारि पहर दिन चरत फिरत बन तऊ न पेट अघैहौ ।

टेढ़ू कंधारु फूटी नाकनि, कौ लौं धौं भुसखैहौ ।

लादत जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूड़ दुरैहौ ।

सीत घाम घन बिपति बहुत बिधि, भार तरै मरि जैहौ ।

हरि संतनि की कह्यौ न मानत, कियो आपुनौ पैहौ ।

सूरदास भगवंत भजन बिनु, मिथ्या जनम गवैहौ ॥

राग सारंग

तजौ मन हरि बिमुखन को संग ।
जिनके संग कुमति उपजत है, परत भजन में भंग ।
कहा होत पय पान कराये, बिष नहिं तजत भुजंग ।
कागहिं कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषण अंग ।
गज को कहा सरित अन्हवाये, बहुरि धरै वह ढंग ।
पाहन पतित बान नहिं वेधत, रीतौ करत निषंग ।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग ॥

राग धनाश्री

रे मन मूरख जनम गँवायौ ।

करि अभिमान बिषयरसगीध्यौ, स्यामसरन नहिं आयौ ।

यह संसार सुवा सेमर ज्यों, सुन्दर देखि लुभायौ ।

चाखन लाग्यौ रुई उड़ि गई, हाथ कछू नहिं आयौ ।

कहा होत अब के पछिताए, पहिले पाप कमायौ ।

कहत सूर भगवंत भजन बिनु, सिर धुन धुनि पछितायौ ॥

(१६२)

राग सारंग

जो सुख होत गुपालहिं गाएँ ।

सो सुख होत न जप-तप कीन्हे, कोटिक तीरथ न्हाएँ ।

दियै लेत नहिं चारि पदारथ, चरन कमल चित लाएँ ।

तीनि लोक तून सम करि लेखत, नंद-नंदन उर आएँ ।

बंसीबट, बृन्दावन जमुना, तजि बैकुंठ न जावै ।

सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव जल आवै ॥

गुरु बिनु ऐसी कौन करे ।

माला तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरे ।

भवसागर तें बूड़त राखै, दीपक हाथ धरे ।

सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन में लै उधरे ॥

(१६४)

सखी री कौन तिहारे जात ।

राजीवनैन धनुष कर लीन्हें, बदन मनोहर गात ।

लज्जित होंहि पुरबधू पूछें, अंग अंग मुसकात ।

अति मृदु चरन पंथ बन बिहरत, सुनियत अदभुत बात ।

सुन्दर तन सुकुमार दोउ जन, सूर किरिन कुम्हलात ।

देखि मनोहर तीनों मूरति, त्रिविध ताप तन जात ॥

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो ।

मोसों कहत मोल कौ लीन्हों, तू जसुमति कब जायौ ।
 कहा करौं इहि रिसि के मारे, खेलन हौं नहि जात ।
 पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात ।
 गोरे नंद जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात ।
 चटकी दै दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसकात ।
 तू मोहीं को मारन सीखी, दाउहिं कबहुं न खीझै ।
 मोहन मुख रिस की ये बातें, जसुमति सुनि सुनि रीझै ।
 सुनहुं स्याम बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत ।
 सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥

जसुमति कान्हिं यहै सिखावति ।

सुनहु स्याम अब बड़े भये तुम, कहि स्तन पान छुड़ावति ।

ब्रज लरिका तोहि पीवत देखत, हँसत लाज नहि आवति ।

जैहँ बिगरि दाँत ये आछे, तातें कहि समुझावति ।

अजहूँ छांड़ि कह्यो करि मेरो, ऐसी बात न भावति ।

सूर स्याम यह सुनि मुस्कियाने, अंचल मुखहिं लुकावति ॥

(१६७)

ब्रज घर घर प्रगटी यह बात ।

दधि माखन चोरी करि तैं हरि, ग्वाल सखा संग खात ।

ब्रज बनिता यह सुनि मन हरषित, सदन हमारे आवैं ।

माखन खात अचानक पावैं, भुज हरि उरहिं छुवावैं ।

मन ही मन अभिलाष करति सब, हृदय धरति यह ध्यान ।

सूरदास प्रभु कौं घर तैं लै, दैहौं माखन खान ॥

मया मैं नहिं माखन खायो ।

ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ ।

देखि तुही सींके पर भाजन, ऊंचे धरि लटकायौ ।

हौं जु कहत नान्हे कर अपने, मैं कैसे करि पायौ ।

मख दधि पोंछि बद्धि इक कीन्हों, दोना पीठि डुरायौ ।

डारि सांठि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ ।

बाल बिनोद मोद मन मोह्यो, भक्ति प्रताप दिखायौ ।

सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ ॥

जसोदा ऊखल बाँधे स्याम ।

- मन मोहन बाहिर ही छांड़ि, आपु गये गृह काम ।
दह्यौ मथति मुख तै कछु बकरति, गारी दै लै नाम ।
घर घर डोलत माखन चोरत, षटरस मेरे धाम ।
ब्रज के लरकनि मारि भजत हैं, जाहु तुमहु बलराम ।
सूर स्याम ऊखल सौं बाँधे निरखहि ब्रज को वाम ॥

(१७०)

निरखि स्याम हलधर मुसकाने ।

को बाँधै को छोरै इनको, यह सहिमा येई पै जाने ।
उतपति प्रलय करत है येई, सेष सहस मुख सुजस बखाने ।
जमलार्जुन तरु तोरि उधारन, कारन करन आपु मन माने ।
असुर संहारन भक्तनि तारन, पावनपतित कहावत बाने ।
सूरदास प्रभुनाम भक्तिके, अतिहित जसुमति हाथ बिकाने ॥

जसुमति किंहि यह सीख दई ।
 सुतहि बांधि तू मथति मथानी, ऐसी निठुर भई ।
 हरें बोलि जुवतिनि कौ लीन्हौ, तुम सब तरुनि नई ।
 लरि किंहि त्रास दिखावत रहिये, कत मुरझाई गई ।
 मेरे प्रान जिवन धन माधो, बांधे बेर भई ।
 सूर स्याम कौ त्रास दिखावति, तुम कहा कहति दई ॥

(१७२)

अब घर काहू के जनि जाहु ।
 तुम्हरे आज कमी काहे की, कत तुम अनतहिं खाहु ।
 बरै जेवरी जिहिं तुम बांधि, परै हाथ महराई ।
 नंद मोहिं अतिहीं त्रासत हैं, बांधे कुँवर कन्हारि ।
 रोग जाउ मेरे हलधर के, छोरत हो तव स्याम ।
 सूरदास प्रभु खात फिरहु जनि, माखन दधि तुव घाम ॥

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई ।

मोहे सुर नर नाथ निरंतर, ब्रज बनिता उठि धाई ।

जमुना नीर प्रवाह थकित भयो पवन रह्यो मुरझाई ।

खग मृग मीन अधीन भये सब अपनी गति बिसराई ।

द्रुम बेली अनुराग पुलक तनु सरि थक्यौ निसि न घटाई ।

सूर स्याम बृन्दावन बिहरत, चलहु सखी सुधि पाई ॥

(१७४)

आजु बन वेनु बजावत स्याम ।

यह कहि कहि चक्रित भई गोपी, सुनत मधुर सुर ग्राम ।

कोउ ज्यौनार करति कोउ बैठी, कोउ ठाढ़ी ही धाम ।

कोउ जेवति कोउ पतिहि जेवांवति, कोउ सिंगार में बाम ।

मनौ चित्र कैसी लिखि काढ़ीं, सुनत परस्पर नाम ।

सूर सुनत मुरली भइ बौरी, मदन कियो तन ताम ॥

मुरली मधुर बजाई स्याम ।

मन हरि लियौ भवन नहि भावै, व्याकुल ब्रज की वाम ।

भोजन भूषन की सुधि नाहीं, तनु की नहीं सम्हार ।

गृह गुरु लाव सूत सों तोरचो, डरीं नहीं व्यवहार ।

करत सिंगार विवस भइ सुन्दरि, अंगनि गई भुलाइ ।

सूर स्याम बन बेनु बजावत, चित हित रास रमाइ ॥

(१७६)

जा दिन तें मुरली कर लीन्ही ।

ता दिन तें स्रवनति सुनि सुनि सखि, मन की बात सबै लै दीन्ही

लोक बेद कुल लाज कानि तजि, अह मरजाद वचन मिति खीनी

तबहीं तें तन सुधि विसराई, निसि दिन रहति गुपाल अधीनी

सरद सुधा निधि सरद अंस ज्यों, सींचति अमी प्रेम रस भीनी

ता ऊपर सुभ दरस सूर प्रभु, श्री गुपाल लोचन गति छीनी

जोबन दान लेउँगौ तुम सौं ।

जाके बल तुम बदति न काहुँहि, कहा दुरावति हमसौं ।
 ऐसौ घन तुम लिये फिरति हौ, दान देत सतराति ।
 अतिहि गर्व तैं कह्यौ न मोसों, नित प्रति आवति जाति ।
 कंचन कलस महारस भारे, हमहूँ तनक चखावहु ।
 सूर सुनौ बिन दिये दान के, जान नहीं तुम पावहु ॥

(१७८)

अब तौ प्रगट भई जग जानी ।

वा मोहन सों प्रीति निरंतर, नाहि रहैगी छानी ॥
 कहा करौ सुन्दर मूरति इन, नैननि माँझ समानी ।
 निकसति नाहि बहुत पचिहारी, रोम रोम अरुझानी ।
 अब कैसे निरवारि जाति है, मिली दूध ज्यों पानी ।
 सूरदास प्रभु अंतरजामी, उर अंतर की जानी ॥

ऊधो मन माने की बात ।

दाख छुहारा छांड़ि अमृत फल विष-कीरा विष खात ।
जौ चकोर को दे कपूर कोउ तजि अंगार अघात ।
मधुप करत घर कोरि काठ में बँधत कमल के पात ।
ज्यों पतंग हित जानि आपनो दीपक सों लपटात ।
'सूरदास' जाको मन जासों सोई ताहि सुहात ॥

(१८०)

गोपिन की सरि कोऊ नाहीं ।

जिनतून-सम-कुललाज-निगड़ सब तोरचो हरिरस माँही ।
जिन निज बस कोने नँदनंदन बिहरीं दै गलबाहीं ।
सब संतन के सीस रहौ इन चरन-छत्र की छाहीं ॥

ब्रज की लता-पता मोहि कीजै ।

गोपी पद पंकज पावन की रज जामें सिर भीजै ।

आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै ।

श्री राधे राधे मुख यह बर मुंहमाँग्यौ हरि दीजै ॥

(१८२)

जैए कौन के अब द्वार ।

जौ जिय होय प्रीत काहू के दुख सहिये सौ बार ।

घर घर राजस तामस बाढ़ो धन जोबन कौं गार ।

काम बिबस ह्वै दान देत नीचन को होत उदार ।

साधु न बूझत बात न सूझत यह कलि के व्यौहार ।

‘व्यासदास’ कत भाजि उबरिए परिए मांझीधार ॥

अवधू, जागत नींद न कीजै ।

काल न खाइ कल्प नहि व्यापै, देही जुरा न छोड़ै ।

उलटी गंग समुद्रहि सोखै, ससिहर सूर गरासै ।

नवग्रिह मारि रोगिया बठे, जल में व्यंब प्रकासै ।

डाल गहमांधे मूल न सूझै, भूल मह्यां फल पावा ।

बाँबई उलटि शरप कौं लागी, धरणी महारस खावा ।

बैठि गुफा में सब जग देखा, बाहरि कछु न सूझै ।

उलटै धनिक पारधी मारचौ यहु अचरज कोइ बूझै ॥

जबथै आतम तत्त बिचारा ।

तब निरवैर भया सबहिन थें, क्षेम क्रोध गहि डारा ।

व्यापक ब्रह्म सबनि हैं एकै को पंडित को जोगी ।

राणा राव कवन सूं कहिये, कवन वैद को रोगी ।

इनमें आप आप सबहिन में आप आप सूं खेलै ।

नाना भांति पड़े सब भांडे रूप धरे धरि मेलै ।

सोच बिचारि सबै जग देखा निरगुण कोइ न बतावै ।

कहै कबीर गुणी अरु पंडित, मिलि लीला जस गावै ॥

ऐसों देखि चरित मन मोह्यो मोर ।
तार्थें निस वासरि गुन रमौ तोरि ॥

इक पठहि पाठ इक भ्रमै उदास ।
इक नगन निरन्तर, रहै निवास ।
इक जोग जुगुति, तन हूँहि खीन ।
ऐसे राम नाम संग श्रहे न लीन ।

इक हूँहि दीन, इक देही दान ।
इक करै कलापी, सुरा पान ।
इक तन्त मन्त औषधि वाँन ।
इक सकल सिद्धि राखै अपान ।

इक तीरथ व्रत करि काय जीति ।
ऐसे राम नाम सूँ करै न प्रीति ।
इक ध्योम ध्यूँटि तन होंहि स्याम ।
यूँ मुकुति नहीं बिन राम नाम ।

मूल कह्यो अनमै बिस्तार ।
जुरा मरण थे भये धीर ।
राम कृपा भई कहि कबीर ॥

(१८६)

अरे परदेसी पीव पिछानि ।
कहा भयो तोकों समझि न परई, लागी कैसी वानि ।
भोमि बिडारिणी मैं कहा रातों, कहा कियो कहि मोहि ।
लाहं कारनि मूल गमावै, समझावत हूँ तोहि ।
निसदिन तोहि क्यों नींद परत है चितवत नाहीं ताहि ।
जम से बैरी सिर पै ठाढ़े पर हथि कहा बिकाय ।
झूठे परपंच में कहा लागों उठ नहि चालि ।
कह कबीर कछु बिलम न कीजै, कौने देखी कालि ॥

हमन हैं इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या ।
 रहें आजाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या ।
 जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर बदर फिरते ।
 हमारा यार है हम में, हमन को इन्तजारी क्या ।
 खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकता है ।
 हमन गुरुनाम साँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या ।
 न पल बिछुड़े पिया हम से, न हम बिछुड़े पियारे से ।
 उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या ।
 कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से ।
 जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या ॥

एक समसेर इकसार बजती रहे,
 खेल सूरमा कोई सन्त झेले ।
 कामदल जीति करि क्रोध पै माल करि,
 परम सुखधाम तहँ सुरति मेले ।
 सील से नेह करि ज्ञान कौ खंग ले,
 आय चौगान में खेल खेले ।
 कहँ कबीर सोई संत सोई सूरमा,
 सीस को साँपि करि करम ठेले ॥

(१८९)

मोतिया बरसै रौरे देसवाँ दिन राती ।
 मुरली शब्द सुनि मन आनन्द भयौ, जोति बरै दिनराती ।
 बिना मूल के कमल प्रगट भयौ, फुलवा फुलत भांति भांती ।
 जैसे चकोर चन्द्रमा चितवै तैसे चातक स्वाती ॥

नैहरवाँ हमकाँ नहीं भावै ॥

साँई की नगरी परम अति सुन्दर, जहाँ कोई जाइ न आवै ।

चाँद सुरज जहाँ पवन न पानी, को संदेस पुचावै ।

दरद यह साँई को सुनावै ॥

आगे चलौ पंथ नहीं सूझै, पीछे दोष लगावै ।

केहि बिधि ससुरे जावँ मोरी सजनी बिरहा जोर जनावै ।

बिषै रस नाच नचावै ॥

बिन सतगुरु अपनो नहिं कोई, जो यह राह बतावै ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, सपने न प्रीतम पावै ।

तपनि यह जिय की बुझावै ॥

माधव असि तुम्हारि यह माया ।

करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिंजबलगि करहु न दाया ।

सुनिय, गुनिय, समुझिय समुझाइय, दसा हृदय नहिं आवै ।

जेहि अनुभव हित मोह जनित भव, दारुन बिपति सतावै ।

ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै ।

तौ कत मृगजल-रूप विषय कारन निसिवासर धावै ।

जेहि के भवन विमल चिन्तामणि सो कत काँच बटोरै ।

सपने परबस परै जागि देखत केहि जाइ निहोरै ।

ग्यान भक्ति साधन अनेक सब सत्य झूठ कछु नाहीं ।

तुलसिदास हरिकृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माहीं ॥

माधव अब न अधिक तरसैये ।

जैसी करत सदा सो आये वही दया दरसैये ।
मानि लेउ हम कूर कुडंगी कपटी कुटिल गँवार ।
कैसे असरन-सरन कहा तुम जन के तारनहार ।
तुम्हरे अछत तीन तेरह यह देस दसा दरसावै ।
पै तुमको यहि जनम धरे की तनिकहु लाज न आवै ।
आरत तुम्हहि पुकारत हमसब सुनत न नित्रभुवन राई ।
अँगुरी डारि कान में बैठे धरि ऐसी निठुराई ।
अजहुँ प्रार्थना यही आप सों अपनो विरद सँवारो ।
'सत्य' दीन दुखियन की विपता आतुर आइ निवारौ ॥

काहे न रसना रामहि गावहि ?

निसदिन पर-अपवाद वृथा कत रटिरटि राग बढ़ावहि ।

नरमुख सुन्दर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि ।

ससि समीप रहि त्यागि सुधाकत रविकरजल कहँ धाँवहि ।

कामकथा, कलिकेरवचंदिनि सुनत स्रवन दै भावहि ।

तिनहिं हटकि कहि हरि कलकीरति करनकलंक नसावहि ।

जातरूपमति जुगुति रुचिरमनि रचिरचि हार बनावहि ।

सरनसुखद रविकुलसरोजरवि राम नृपहि पहिरावहि ।

बादविवादबाद तजि भजिहरि सरस चरित चित लावहि ।

तुलसिदास भव तरहि तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥

तुम बिन प्यारे कहूँ सुख नाहीं ।

भटवयो बहुत स्वाद-रस लंपट ठौर ठौर जग माहीं ।

प्रथम चाव करि बहुत पियारे जाइ जहाँ ललचाने ।

तहूँ तें फिर ऐसो जिय उचटंत आवत उलटि ठिकाने ।

जित देखौं तित स्वारथ ही को निरस पुरानी बातें ।

अतिहि मलिन व्यवहार देखि कै धिन आवत है तातें ।

जानत भले तुम्हारे बिनु सब बादिहि बीतत साँसैं ।

‘हरीचंद’ नहिं छुटत तऊ यह, कठिन मोह की फाँसैं ।

प्रार्थना

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्र मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर् ॥
 वेदैः सांग-पद-क्रमोपनिषदैर् गायन्ति यं सामगाः ॥
 ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो ॥
 यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र और मरुतगण दिव्य-स्तोत्रों से जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेद का गान करने वाले मुनि अंग, पद, क्रम और उपनिषदों के साथ वेदमंत्रों से जिसकी स्तुति करते हैं, योगीजन समाधि लगाकर परमात्मा में लीन मन द्वारा जिसके दर्शन करते हैं, और देवता और दैत्य जिसकी महिमा का पार नहीं पाते उस परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ।

स्थित प्रज्ञ के लक्षण !

अर्जुन उवाच—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ! ।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥

अर्जुन बोले—हे केशव ! स्थितप्रज्ञ या समाधिस्थ के लक्षण क्या हैं ? स्थितप्रज्ञ किस तरह बोलता, बैठता और चलता है ?

श्री भगवानुवाच—

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ ! मनोगतान् ।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस् तदोच्यते ॥

श्री भगवान् बोले—हे पार्थ ! जब मनुष्य मन में पैदा होने वाली सभी कामनाओं को छोड़ देता है, और आत्मा द्वारा आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है ।

दुःखेष्वनुद्विग्न-मनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीत-राग-भय-क्रोधः स्थितधीर् मुनिरुच्यते ॥

जो दुख से दुखी नहीं होता, सुख की चाह नहीं करता और जो राग, भय और क्रोध से रहित होता है, वह स्थिरबुद्धि मुनि कहलाता है ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस् तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जो सब वहाँ निरासक्त रहकर शुभ या अशुभ पाने पर न खुश होता है, न रंज मानता है, उसकी बुद्धि स्थिर है ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस् तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जिस तरह कछुआ सब ओर से अपने अंगों को सिकोड़ लेता है, उसी तरह जब पुरुष अपनी इन्द्रियों को उनके विषय से अलग कर लेता है, तब वह स्थिरबुद्धि कहा जाता है ।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

जब देहधारी निराहारी रहता है तब उसके विषय शिथिल हो जाते हैं पर रस नहीं छूटता । रस तो परमात्मा का साक्षात्कार होने से ही छूटता है ।

यततो ह्यपि कौन्तेय ! पुरुषस्य विपश्चितः ।

इन्द्रियाणि प्रमाथोनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥

हे कुन्तीपुत्र ! ज्ञानी पुरुष के यत्नशील रहने पर भी इन्द्रियाँ इतनी मस्त होती हैं कि वे उसके मन को जबरदस्ती खींच ले जाती हैं ।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

इन सब इन्द्रियों को वश में रखकर योगी को चाहिये कि वह मुझमें तन्मय होकर रहे । क्योंकि अपनी इन्द्रियाँ जिनके वश में हैं उसकी बुद्धि स्थिर है ।

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस् तेषूपजायते ।

संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष को उन विषयों में आसक्ति पैदा होती है । फिर आसक्ति से कामना पैदा होती है' और कामना से क्रोध पैदा होता है ।

क्रोधादभवति संमोहः संमोहात् स्मृति-विभ्रमः ।

स्मृति-भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥

क्रोध से मूढ़ता पैदा होती है, मूढ़ता से स्मृतिलोप, होता है, और स्मृतिलोप से बुद्धि नष्ट हो जाती है, और जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मरे के बराबर है ।

राग-द्वेष-वियुक्तैस् तु विषयान् इन्द्रियैश् चरन् ।

आत्मवश्यैर् विधेयात्मा प्रसादम् अधिगच्छति ॥

लेकिन जिस मनुष्य का मन उसके वश में होता है और जिसकी इन्द्रियाँ राग-द्वेष-रहित होकर उसके आधीन रहती हैं वह मनुष्य इन्द्रियों से काम लेता हुआ भी चित्त की प्रसन्नता पा जाता है ।

प्रसादे सर्वदुःखानाम् हानि रस्योयोपजायते ।

प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

चित्त की प्रसन्नता से उसके सब दुख मिट जाते हैं और प्रसन्न मनुष्य की बुद्धि तुरन्त ही स्थिर हो जाती है । नास्ति बुद्धिर् अयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना । न चाभावयतः शान्तिर् अशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

जिसमें समत्व नहीं उसमें विवेक नहीं, भक्ति नहीं । और जिसमें भक्ति नहीं, उसे शान्ति नहीं । और जहाँ शान्ति नहीं वहाँ सुख कहाँ से आये ?

इन्द्रियाणाम् हि चरताम् यन्मनोऽनुविधीयते ।

तदस्य हरति प्रज्ञाम् वायुर् नावम् इवाम्भसि ॥

जिसका मन विषयों में भटकती हुई इन्द्रियों के पीछे दौड़ता है, उसका मन उसकी बुद्धि को उसी तरह जहाँ चाहे खींच ले जाता है, जिस तरह हवा नाव को पानी में खींच ले जाती है ।

तस्माद् यस्य महाबाहो ! गृहीतानि सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस् तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

इसलिए हे महाबाहो ! जिसकी इन्द्रियाँ सब तरफ से विषयों से हटकर उसके वश में आ जाती हैं उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है ।

या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

जब सब प्राणी सोये होते हैं तब संयमी पुरुष जागता है । जहाँ लोग जागते होते हैं वहाँ ज्ञानवान मुनि सोता है ।

आपूर्यमाणम् अवल-प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् तद् वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी

नदियों के गिरते रहने से लगातार भरा जाने वाला समुद्र जिस तरह अवल रहता है ,उसी तरह जिस मनुष्य के सारे काम-भोग शान्त हो जाते हैं वही शान्ति पाता है ; कामनाओं वाला मनुष्य नहीं ।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिम् अधिगच्छति ।

सभी कामनायें छोड़कर जो मनुष्य इच्छा, ममता और अहंकार रहित होकर विचरता है वही शान्ति पाता है ।

एषा ब्राह्मी-स्थितिः पार्थ ! नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणम् एच्छति ॥

हे पार्थ ! ईश्वर को जानने वाली यही ब्राह्मी स्थिति है । इसे पाने पर मनुष्य मोह के वश में नहीं होता, और मरते समय भी यही स्थिति बनी रहे तो वह ब्रह्मनिर्वाण यानी मोक्ष पाता है ।

(श्रीमद्भगवद्गीता)

तुलसी सूक्ति सुधा ।

पर हित बस जिनके मन माँही ।
तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
* * *

पर हित सरिस, धरम नहि भाई ।
पर पीड़ा सम नहि अधमाई ॥
* * *

सुमति कुमति सबके उर बसहीं ।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना ॥
* * *

धन्य सो भूप नीति जो करई ।
धन्य सो द्विज निज धर्म न ढरई ॥

धन्य घरी सोइ जब सत्संगा ।
 धन्य जन्म हरि भक्ति अभंगा ॥

*

*

*

साधु चरित सुभ सरिस कपासू ।
 निरस विसद गुनमय फल जासू ॥
 जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा ।
 वंदनीय जेहि जग जस पावा ॥

*

*

*

जेहि के जेहि पर सत्य सनेह ।
 सो तेहि मिलत न कछु संदेह ॥

*

*

*

रघुकुल रीति सदा चलि आई ।
 प्राण जाहि पर बचन न जाई ॥

*

*

*

नहिं असत्य सम पातक पुंजा ।
 गिर सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
 सत्य मूल सब सुकृत सुहाये ।
 वेद पुरान , विदित मुनि गाये ॥

*

*

*

सुनहु राम अब कहउं निकेता ।
 बसहु जहाँ सिय लखन समेता ॥
 जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना ।
 कथा तुम्हारि सुमग सरि नाना ॥
 भरहि निरन्तर होहिं न पूरे ।
 तिन्ह के हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे ॥

*

*

*

लोचन चातक जिन करि राखे ।
 रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥

निदराहि सरित सिन्धु सर भारी ।
 रूप विन्दु जल होहि सुखारी ॥
 तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक ।
 बसहु बन्धु-सिय-सह रघुनायक ॥
 * * *

प्रभु प्रसाद सचि सुभग सुबासा ।
 सादर जासु लहइ नित नासा ॥
 तुमहि निवेदित भोजन करहीं ।
 प्रभु प्रसाद पटु भूषन धरहीं ॥
 सीस नवाहि सुर-गुरु द्विज देखी ।
 प्रीति सहित करि विनय बिसेखी ॥
 कर नित करहि राम पद पूजा ।
 राम भरोस हृदय नहि दूजा ॥
 चरन राम तीरथ चलि जाहीं ।
 राम बसहु तिनके मन माहीं ॥
 * * *

मित्ररा तु नित जपाह तुम्हारा ।
 पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा ॥
 तरपन होम करहिं विधिनाना ।
 विप्र जेवाँय देहिं बहु दाना ॥
 तुम्हते अधिक गुरुहिं जिय जानी ।
 सकल भाव सेवहिं सनमानी ॥
 * * *

काम क्रोध मद मान न मोहा ।
 लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
 जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया ।
 तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
 * * *

सबके प्रिय सबके हितकारी ।
 दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
 कहहि सत्य प्रिय वचन उचारी ।
 जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥

तुम्हहि छाँड़ि गति दूसर नाहीं ।
 राम बसहु तिन्हके मन माहीं ॥

*

*

*

जननी सम जानहि पर नारी ।
 धन पराय बिष तें बिष भारी ॥
 जे हरषहि पर संपति देखी ।
 दुखित होहि पर विपति विसेखी ।
 जिन्हहि राम तुम प्रान पियारे ॥
 तिन्ह के मन सुभ सदन तिहारे ॥

*

*

*

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं ।
 बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
 नीति निपुन जिन्ह कह जग लीका ।
 घर तुम्हार तिन्ह कर मन नीका ॥

गुन तुम्हार समुझहि निज दोसा ।
 जेहि सब भांति तुम्हार भरोसा ॥
 राम भगत प्रिय लागहि जेही ।
 तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
 * * *

जाति पांति धनु धरमु बड़ाई ।
 प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
 सब तजि तुमहि लहइ लव लाई ।
 तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥
 * * *

सो जानै जेहि देहु जनाई ।
 जानत तुमहि, तुमहि ह्वै जाई ॥

विजय-रथ

रावनु रथी विरथ रघुवीरा ।

देख विभीषन भयउ अधीरा ॥

अधिक प्रीति मन भा संदेह ।

बेदि चरन कह सहित सनेह ॥

*

*

*

नाथ न रथ नहि तन पद त्राना ।

केहि बिधि जितब वीर बलवाना ॥

*

*

*

सुनहु सखा कह कृपा निधाना ।

जेहि जय होइ सो स्पंदन आना ॥

सौरज धीरज तेहि रथ चाका ।

सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥

बल विवेक दम परहित घोरे ।
छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजन सारथी सुजाना ।
विरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा ।
बल विग्यान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना ।
सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा ।
एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥
महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ को वीर ।
जाके अस रथ होइ दूढ़, सुनहु सखा मति घीर ॥

कवीर-बानी !

सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात ।
हरि समान को है हितू, हरिजन सम को जात ॥

* * *

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाँय ।
बलिहारो गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय ॥

* * *

लेने को सतनाम है, देने को अनदान ।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ॥

* * *

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै, दुख काहे को होय ॥

* * *

कबिरा गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस ।
 ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥
 * * *

कबिरा प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय ।
 रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥
 * * *

कहना था सो कह दिया, अब कछु कहा न जाय ।
 एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥
 * * *

लागी लागी का करै, लागी बुरी बलाय ।
 लागी सोई जानिये, जो वारपार ह्वै जाय ॥
 * * *

सोवौं तो सुपने मिलैं, जागौं तो मनमार्हि ।
 लोचन राता सुधि हरी, विछुरत कवहूँ नार्हि ॥
 * * *

सुपने में साँई मिले, सोवत लिया जगाय ।
 आँखि न खोलूं डरपता, मत सुपना हूँ जाय ॥
 * * *

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात ।
 दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी परी बरात ॥
 * * *

कवीरा बादल प्रेम का, हम पर बरष्या आइ ।
 अंतरि भीगी आत्मा, हरी भई बन राइ ॥
 * * *

आप छके नैना छके, और छके सब गात ।
 जा तन चितवत नैनभरि, रोम रोम छकि जात ॥
 * * *

मांस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग ।
 साहिब अजहुं न आइया, मंद हमारे भाग ॥
 * * *

प्रीतम हम तुम एक हैं, कहन सुनन को दोग ।
मन से मन को तौलिये, दो मन कभी न होय ॥

*

*

*

हँसि हँसि कन्त न पाइया, जिन पाया तिन रोइ ।
जो हाँसे ही हरि मिलै, तौ न दुहागिन होइ ॥

*

*

*

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल ।
लाली देखत ह्वै गई, मैं भी लाल गुलाल ॥

*

*

*

प्रीतम को पतियाँ लिखूं, जो कहूँ होय विदेश ।
तन में, मन में, नयन में, ताको कहा संदेश ॥

*

*

*

नयनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय ॥

*

*

*

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास ।
सब जग जरता देखि कर, भये कबीर उदास ॥

* * *

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात ।
देखत ही मिट जायगी, ज्यों तारा परभात ॥

* * *

रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय ।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदलै जाय ॥

* * *

कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥

* * *

माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकार ।
फूली फूली चुन लिये, काल्ह हमारी बार ॥

* * *

और कर्म सब कर्म है, भक्ति कर्म निष्कर्म ।
कहै कबीर पुकारि कै, भक्ति करो तजि धर्म ॥

*

*

*

लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय ।
मोठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥

*

*

*

ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय मांहि ।
ऐसे जन जग में रहै, हरि को भूलै नाहि ॥

*

*

*

कबिरा हँसना दूर करु, रोने से करु प्रीत ।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥

*

*

*

सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥

*

*

*

यह तनु काचा कुम्भ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जदि तदि परलै जाइ ॥

*

*

*

कबिरा बँद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि।
बँद न वेदन जानई, करक करेजे माँहि ॥

*

*

*

जाहु बँद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या वेदन निर्मई, भला करेगा सोय ॥

*

*

*

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहि।
सीस उतारै भुँइ धरै, तब पैठे घर माँहि ॥

*

*

*

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥

*

*

*

छिनाहिं चढ़े छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय ।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥

* * *

प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीहँ कोय ।
आठ पहर माता रहै, प्रेम कहावै सोय ॥

* * *

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहि ।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहि ॥

* * *

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान ।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिन प्रान ॥

* * *

प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चन्द चकोर ।
घी चूँ भुईं में गिरै, चितवै वाही ओर ॥

* * *

जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुध व्यौहार ।
 प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिनै तिथि बार ॥

*

*

*

प्रेम छिपाये ना छिपै, जा घट परघट होय ।
 जो पै मुख बोलौ नहीं, नैन देत हैं रोय ॥

*

*

*

पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान ।
 एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान ॥

*

*

*

जिनके नौबत बाजती, मँगल बँधते वारि ।
 एकै हरि के नाँव बिन, गये जन्म सब हारि ॥

*

*

*

कबिरा यह तन जात है, सकै तो लेहु बहोड़ि ।
 नागे हाथे ते गये, जिनके लाख करोड़ि ॥

*

*

*

साँई इतना दीजिये, जामें कुटुंब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥

*

*

*

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहिरे पानी पैठि ।
हौ बौरी ढूँढ़न गई, रही किनारे बैठि ॥

*

*

*

सहन के नहिं लोंहड़े, हंसन की नहिं पाँत ।
लालन की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात ॥

*

*

*

कबिरा संगत साधु की, हरै और की व्याधि ।
संगत बुरी असाधु की, आठो पहर उपाधि ॥

*

*

*

केला तबहिं न चेतिया, जब ढिग लागी बेरि ।
अव के चेते क्या भया, काँटन लीन्हा घेरि ॥

*

*

*

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप ।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥

*

*

*

सहज मिलै सो दूध सम, माँगाँ मिलै सो पानि ।
कह कबीर वह रक्त सम, जा में ऐँचा तानि ॥

*

*

*

जो तो कूँ काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।
तोकोँ फूल को फूल है, वाको हैं तिरसूल ॥

*

*

*

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की साँस सों लोह भसम ह्वै जाय ॥

*

*

*

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय ॥

*

*

*

सीलवंत सब तें बड़ा, सर्व रतन की खानि ।
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि ॥

*

*

*

गोधन, गजधन, बाजधन, और रतन धन खान ।
जब आतैं संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥

*

*

*

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजों आपना, मुझ सा बुरा न कोय ॥

*

*

*

कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥

*

*

*

कबीर नीबत आपणी, दिन दस लेहु बजाय ।
ए पुर पाटन ए गली, बहुरि न देखे आय ॥

*

*

* *

काम, क्रोध, मद, लोभ की, जब लगि घट में खान ।
कहा मूरख कहा पंडिता, दोनों एक समान ॥

*

*

*

साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देखु मनमाँहि ।
बिन साखी संसार कौ, झगरा छूटत नाहि ॥

*

*

*

मंजिल तो है नेह का, मति कोइ पैठे धाय ।
जो कोइ पैठे धाइ के, बिन सिर सेती जाय ॥

*

*

*

मैं सिरजों मैं मारहूँ, मैं जारों मैं खांव ।
जल थल में मैं रमि रह्यौ, मोर निरंजन नाँव ॥

*

*

*

हृद छांड़ि बेहद गया, किया सुनि असनान ।
मुनिजन महल न पावई, तहाँ किया बिश्राम ।

*

*

*

सहजै सहजै सब गये, सुत वित कामिणि काम ।
एकमेक त्वै मिलि रह्यौ, दास कबीरा राम ॥

*

*

*

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
जिन्ह सहजै हरि जी मिलै, सहज कहीजै सोय ॥

*

*

*

कहै कबीर बिचारि करि, जिनि कोई खोजै दूरि ।
ध्यान धरौ मन सुद्ध करि, राम रह्या भरपूरि ॥

*

*

*

कहै कबीर बिचारि करि, झूठा लोही चाम ।
जो या देही रहति है, सो है रमिता राम ॥

*

*

*

ऐसा कोई ना मिलै, जासों रहिये लागि ।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आगि ॥

*

*

*

ऐसा कोई ना मिलै, जासों कहूँ निसंक ।
जासों हिरदै की कहूँ, सो फिरि मारै डंक ॥

* * *

प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय ।
प्रेमी को प्रेमी मिलै, तब सब विष अमृत होय ॥

* * *

भली भई जो गुरु मिल्या, नहिं तर होती हाँणि ।
दीपक दृष्टि पतंग ज्युं, परता पूड़ी जाँणि ॥

* * *

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पडन्त ।
कहै कबीर गुरु ग्यान कै, एक आध उबरन्त ॥

* * *

सारा सारा बहु मिले, वाइल मिलै न कोइ ।
घाइल ही घाड़ो मिल, तब राम भगति दृढ़ होइ ॥

* * *

कबिरा सब जग हंडिया, मंदिल कंध चढ़ाइ ।
हरि बिन अपना कोइ नहिं, देखे ठोकि बजाइ ॥

*

*

*

कबिरा भया है केतकी, भँवर भये सब दास ।
जहँ जहँ भगति कबीर की, तहँ तहँ राम निवास ॥

*

*

*

भाग बिना नहिं पाइये, प्रेम प्रीति की भक्त ।
बिना प्रेम नहिं भक्ति कछु, भक्ति पर्यो सब जक्त ॥

*

*

*

मैं अबला पिउ पिउ करूँ, निर्गुन मेरा पीव ।
शून्य सनेही राम बिन, देखूँ और न जीव ॥

*

*

*

अविनासी की सेज का, कैसा है उनमान ।
कहिवे की सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥

*

*

*

अविनासी की सेज पर, केलि करै आनन्द ।
कहै कबीर वा सेज पर, बिलसत परमानन्द ॥

*

*

*

है कोई ऐसा पर उपगारी, हरि सो कहै सुनाइ रे ।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, विनु देखे जिय जाइ रे ॥

*

*

*

पूरेसूं परचा गया, सब दुख मेल्या दूरि ।
निर्मल कीन्ही आतमा, तायै सदा हूजूरि ॥

*

*

*

हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ ॥

*

*

*

आगि आँच सहना सुगम, सुगम खड्ग की धार ।
नेह निवाहन एक रस, महा कठिन व्यवहार ॥

*

*

*

साई सेंति न पाइये, बाताँ मिलै न कोय ।
कबिरा सौदा राम सोँ, सिर बिन कदै न कोय ॥

*

*

*

कबिरा यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहि ।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैठे घरमाँहि ॥

*

*

*

कबिरा निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध ।
सीस उतारि पगतल धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद ॥

*

*

*

कबिरा रेख सिंदूर की, काजल दिया न जाय ।
नैनु रमइया रमि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥

*

*

*

नैना अंतर आव तूं, ज्यों ही नैन झंपेउँ ।
ना हौं देखूं और कूं, ना तुझ देखन देउँ ॥

*

*

*

मन परतीति न प्रेम रस, ना इस तन में ढंग ।
क्या जानौं उस पीव सूं, कैसी रहसी रंग ॥

*

*

*

पढ़ि पढ़ि के पत्थर भया, लिखि लिख भया जु ईंट ।
कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एकौ छींट ॥

*

*

*

पोथा पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥

*

*

*

जाके मन विश्वास है, सदा गुरु है संग ।
कोटि काल झकझोरहिं, तऊ न होय चित भंग ॥

*

*

*

आंखड़ियाँ झाड़ै पड़ी, पन्थ निहारि निहारि, ।
जोभड़ियाँ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि ॥

*

*

*

हंसि हंसि कत न पाइये, जिन पाया तिन रोइ ।

जो हाँसे ही हरि मिलै, तो न दुहागिनि कोइ ॥

*

*

*

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।

पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥

*

*

*

जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम ।

दोऊ हाथ उलीचिये, यह सज्जन को काम ॥

*

*

*

मूरख को समझावते, ज्ञान गांठि को जाय ।

कोइला होइ न ऊजरो, नौ मन साबुन लाय ॥

*

*

*

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल ।

जो बकरी को खात है, ताको कौन हवाल ॥

दोहा

अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम ॥

*

*

*

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
रहिमन मूलहि सीचिबो, फूलै फलै अघाय ॥

*

*

*

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस ।
जापर बिपदा पड़त है, सो आवत यहि देस ॥

*

*

*

छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात ।
का रहीम हरि को घटचो, जो भृगु मारी लात ॥

*

*

*

जे गरीब पर हित करें, ते रहीम बड़ लोग ।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मितार्ई जोग ॥

*

*

*

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥

*

*

*

धूर धरत निज सीस पै, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो दूढ़त गजराज ॥

*

*

*

वसि कुसंग चाहत कुशल, यह रहीम जिय सोस ।
महिमा घटी समुद्र की रावन बस्यो परोस ॥

*

*

*

रहिमन अंसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥

*

*

*

रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर ।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं बेर ॥

*

*

*

रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून ।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून ॥

* * *

रहिमन ते नर मरि चुके, जे कहूँ माँगन जाँहि ।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाँहि ॥

* * *

राम न जाते हरिन संग, सीय न रावण साथ ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होत आपुने हाथ ॥

* * *

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिनु ।
बरु विष देइ बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥

* * *

कहु रहीम का करि सकें, जारी, चोर लबार ।
जो पतराखन हार है, माखन-चाखनहार ॥

* * *

हरि तुम सों कीजत यहै, बिनती बार हजार ।
जेहि-तेहि भांति डरचो रहौ, परचो रहौ दरबार ॥

*

*

*

बहुत दिनन की जोवती, रटत तुम्हारो नाम ।
जिउ तरसै तुव मिलन को, मन नाहीं विश्राम ॥

*

*

*

नैननि तो झरि लाइया, रटत रहै निसिबास ।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै, पियामिलन की आस ॥

*

*

*

तुलसी अपने राम को, रीझ भजो कै खीझ ।
उलटो सीधो जामिहै, खेत परे को बीज ॥

*

*

*

बनै सो रघुबर सो बनै, कै बिगरे भरपूर ।

तुलसी बनै जो और सों, ता बनिवे में धूर ॥

*

*

*

चातक सुतहिं सिखावहीं, आनि धर्म जनि लेहु ।
अपने कुल की रीति यह, स्वाति बूंद सों नेहु ॥
* * *

राम-नाम-मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहरहु, जो चाहसि उजियार ॥
* * *

मो सम दीन न दीन हित, तुम समान रघुबीर ।
अस विचारि रघुवंश माणि, हरहु विषम भवपीर ॥
* * *

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि के जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तरहु, प्रिय लागहु मोहि राम ॥
* * *

हरि-पद प्रीति न होय, बिन हरि-गुन गाये सुने ।
भव ते छुटत न कोय, बिना प्रीति हरिपद भये ॥
* * *

जहां काम तहें राम नहिं, जहां राम नहिं काम ।
एक संग निबहत नहीं, तुलसी छाया घाम ॥

*

*

*

सेवक दुखते दुखित है, स्वामि विकल ह्वं जाइ ।
दुःख निवारे शीघ्र ही, करुना गुन सो आइ ॥

*

*

*

बार बार वर मांगहुँ, हर्षि देहु श्री रंग ।
पद सरोज अनपावनी, भक्ति सदा सत्संग ॥

बुद्ध-वाणी

(१)

सभी धर्म पहिले मन में उत्पन्न होते हैं। मन ही मुख्य है वे मनोमय हैं। जब आदमी मलिन मन से बोलता व कार्य करता है तब दुख उसके पीछे वैसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिये बैलों के पैरों के पीछे पीछे।

(२)

सभी अवस्थायें पहले मन ही में उत्पन्न होती हैं। मन ही मुख्य है, वे मनोमय हैं। जब आदमी स्वच्छ मन से बोलता व कार्य करता है, तब सुख उसके पीछे वैसे ही हो लेता है जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया।

मुझे गाली दी । मुझे मारा । मुझे हराया । मुझे
लूट लिया । जो ऐसा सोचा करते हैं उनका वैर कभी
शान्त नहीं होता ।

(४)

वैर वैर से शान्त नहीं होता । अवैर से ही शान्त
होता है । यही संसार का सनातन नियम है ।

(५)

यदि घर की छत ठीक न हो तो जिस प्रकार उसमें
वर्षा का जल प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार यदि संयम
का अभ्यास न हो तो मन में राग प्रविष्ट हो जाता है ।

(६)

पापी मनुष्य दोनों जगह शोक करता है यहाँ भी
और परलोक में भी । अपने दुष्ट कर्मों को देख कर
दुखित होता है, पीड़ित होता है ।

शुभ कर्म करने वाला मनुष्य दोनों जगह प्रसन्न रहता है, यहाँ भी और परलोक में भी। अपने शुभ कर्म को देखकर मुदित होता है, प्रमुदित होता है।

(८)

धर्मग्रन्थों का कितना ही पाठ करे लेकिन यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उन धर्मग्रन्थों के अनुसार आचरण नहीं करता तो दूसरे की गौर्वें गिनने वाले ग्वालों की तरह वह श्रमणत्व का अधिकारी नहीं है।

(९)

धर्मग्रन्थों का चाहे थोड़ा ही पाठ करे लेकिन यदि राग, द्वेष तथा मोह से रहित कोई व्यक्ति धर्म के अनुसार आचरण करता है तो ऐसा बुद्धिमान, अनासक्त यहाँ वहाँ, दोनों लोकों में, भोगों के पीछे न भागता हुआ धर्म का भागी होता है।

ध्यान करने वाले, जागरूक, नित्य दृढ़ पराक्रम में
लगे रहने वाले, धीर जन ही, अनुत्तर योग क्षेम निर्वाण
को प्राप्त करते हैं।

(११)

उद्योगी, जागरूक, पवित्र कर्म करने वाले, सोच
समझ कर काम करने वाल, संयमी, धर्मानुसार जीविका
चलाने वाले, अप्रमादी मनुष्य के यश की वृद्धि होती है।

(१२)

प्रमाद मत करो। काम भोगों में मत फँसों।
प्रमाद रहित हो ध्यान करने से विपुल सुख के भागी
बनोगे।

(१३)

चित्त चंचल है, चपल है, दुर-रक्ष्य है, दुर-निवार्य
है। मेधावी पुरुष उसे इसी प्रकार सीधा करता है
जैसे वाण बनाने वाला वाण को।

(१४)

कठिनाई से निग्रह किये जा सकने वाले, शीघ्रगामी, जहाँ चाहे वहाँ चले जाने वाले चित्त का दमन करना अच्छा है। दमन किया हुआ चित्त सुख देने वाला होता है।

(१५)

जिसका चित्त मल रहित है, जिसका चित्त स्थिर है, जो पाप-पुण्य विहीन है, उस जागरूक पुरुष के लिये भय नहीं है।

(१६)

अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना रहित हो, काठ की भांति, धरती पर गिर पड़ेगा।

(१७)

न माता-पिता, न दूसरे रिश्तेदार, आदमी की उतनी भलाई करते हैं जितनी भलाई सन्मार्ग पर गया हुआ चित्त करता है।

(१८)

ization by American Academy of Indic Studies, AAIS(U)

अपने ही कृत-अकृत को देखते रहो ।

(१९)

जागते रहने वाले की रात लंबी होती है, थके हुए का योजन लंबा होता है, इसी प्रकार सद्धर्म को न जानने वाले मूर्ख आदमी का सांसारिक आवागमन लम्बा हो जाता है ।

(२०)

यदि विचरण करते हुए अपने से श्रेष्ठ व अपने जैसे साथी को न पाये तो आदमी दृढ़तापूर्वक अकेला ही रहे । मूर्ख की संगति अच्छी नहीं ।

(२१)

‘पुत्र मेरे हैं, धन मेरा है’ सोच मूर्ख आदमी दुखित होता है । जब शरीर तक अपना नहीं है तब पुत्र कहाँ और धन कहाँ ?

यदि मूर्ख अपने को मूर्ख समझे तो उतने अंश में तो बुद्धिमान है। असली मूर्ख तो वह है जो मूर्ख होते हुए भी अपने को पंडित समझता है।

(२३)

उस काम का करना अच्छा नहीं जिसे करके पछताना पड़े और जिसके फल को रोते हुए भोगना पड़े।

(२४)

जब तक पापकर्म फल नहीं देते तब तक मूर्ख उन्हें मधु की तरह मीठा समझता है। लेकिन जब पापकर्म फल देता है तब उसे दुख होता है।

(२५)

लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण का दूसरा। इसे इस प्रकार जानकर बुद्ध का शिष्य भिक्षु सत्कार की इच्छा न करे—विवेक व एकान्तचर्या की वृद्धि करे।

(२६)

जो आदमी अपना दोष दिखाने वाले को धन दिखाने वाले की तरह समझे, जो संयम के समर्थक मेधावी पंडित की संगति करे, उसका कभी अकल्याण नहीं हो सकता ।

(२७)

न दुष्ट मित्रों की संगति करे, न अधम पुरुषों की संगति करे । अच्छे मित्रों की संगति करे, उत्तम पुरुषों की संगति करे ।

(२८)

जो पार पहुँचते हैं वह तो मनुष्यों में थोड़े ही हैं । बाकी आदमी तो किनारे पर ही दौड़ते रहते हैं ।

(२९)

सत्तपुरुष आसक्त नहीं होते । वह काम भोगों के लिए वात नहीं बनाते । उन्हें चाहे दुःख हो चाहे सुख, वे विकार को प्राप्त नहीं होते ।

(३०)

सारथी द्वारा सुशिक्षित घोड़ों की तरह जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हैं जिसका अभिमान नष्ट हो गया है, जो आश्रव-रहित हैं, ऐसे पुरुष की देवता भी स्पृहा करते हैं।

(३१)

एक आदमी संग्राम में लाखों आदमियों को जीत ले और एक दूसरा अपने आप को जीत ले। यह दूसरा आदमी ही सच्चा संग्राम विजयी है।

(३२)

जो अभिवादन शील है, जो नित्य बड़ों की सेवा करता है, उसके आयु, वरण तथा बल में वृद्धि होती है।

(३३)

आलसी और अनुद्योगी के सौ वर्ष के जीवन से दृढ़तापूर्वक उद्योग करने वाले का एक दिन का जीवन अच्छा है।

शुभ कर्म करने में जल्दी करो । पापों को मन से
हटाओ । शुभ कर्म करने में ढील करने पर, मन
पाप में रत होने लगता है ।

(३५)

यदि पाप करे तो उसे फिर फिर न करे । उसमें
रत न होवे । पाप का संचय दुख का कारण होता है ।

(३६)

यदि शुभ कर्म करे तो उसे फिर फिर करे । उसमें
रत होवे । पुण्य का संचय सुख का कारण होता है ।

(३७)

जो शुद्ध, निर्मल, दोष रहित मनुष्य को दोषी ठह-
राता है उस दोषी ठहराने वाले मूर्ख को ही पाप लगता
है । जैसे हवा की दिशा के विरुद्ध फेंकी हुई धूल फेंकने
वाले पर पड़ती है ।

सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को मृत्यु से भय लगता है और सभी को जीवन प्रिय है। इसलिए सभी को अपना जैसा समझ न किसी को मारों न किसी को मरवाओ।

(३९)

पानी ले जाने वाले पानी ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण नवाते हैं, बढ़ई लकड़ी नवाते हैं और सुव्रती जन अपना दमन करते हैं।

(४०)

सब कुछ जल रहा है पर तुम्हें आनन्द और हँसी सूझ रही है। अंधकार से घिरे रह कर भी तुम प्रदीप को नहीं खोजते।

(४१)

इस विचित्र शरीर को देखो जो व्रणों से युक्त है,
जो फूला हुआ है जो रोगी है, जो नाना प्रकार के संकल्पों
से युक्त है, जिसकी स्थिति निश्चित नहीं है ।

(४२)

जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया, जिन्होंने
जवानी में धन नहीं कमाया, वह बिना मछली के
तालाब में बूढ़े कौंच पक्षी की तरह ध्यान लगाते हैं ।

(४३)

गृह कारक को ढूँढ़ते हुए मैं अनेक जन्मों तक
लगातार संसार में दौड़ता रहा । बार बार जन्म लेना
दुःख है ! गृहकारक तू दिखायी दे गया । अब फिर
घर नहीं बना सकेगा । तेरी सब कड़ियाँ टूट गयीं ।
घर का शिखर बिखर गया । चित्त संस्कार रहित
हो गया । तृष्णाओं का क्षय हो गया ।

(४४)

जय से वर पैदा होता है । पराजित दुखी रहता है ।
जय पराजय दोनों को छोड़कर शान्त मनुष्य सुखपूर्वक
सोता है ।

(४५)

निःरोग रहना सबसे बड़ा लाभ है । सन्तुष्ट रहना
परम धर्म है । विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है । निर्वाण
सबसे बड़ा सुख है ।

(४६)

एकान्तवास और शान्ति के रस को पान कर
आदमी निडर होता है और धर्म के प्रेम रस को पान कर
निष्पाप ।

(४७)

सत्पुरुषों का दर्शन अच्छा है, सत्पुरुषों की संगति
सुखकर है मूर्खों का दर्शन न होने से आदमी सुखी रहता है ।

प्रियों का साथ न करो । और अप्रियों का साथ
कभी न करो । प्रियों का अदर्शन दुखद होता है और
अप्रियों का दर्शन ।

(४९)

इसलिए किसी को प्रिय न बनाओ, प्रिय का नाश
बुरा होता है । उनके दिल में गाँठ नहीं होती जिनके
प्रिय अप्रिय नहीं होते ।

(५०)

प्रिय से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय । जो
प्रिय से मुक्त है उसे शोक कहाँ, भय कहाँ ?

(५१)

जो शीलवान हैं, विद्वान हैं, जो धर्म में स्थित हैं,
जो सत्यवादी हैं, जो अपने काम को करने वाले हैं,
ऐसे आदमी को लोग प्यार करते हैं ।

(५२)

क्रोध को अक्रोध से, बुराई को भलाई से, कंजूसपन को दान से और झूठ को सत्य से जीतो ।

(५३)

सत्य बोलो, क्रोध न करो, माँगने पर थोड़ा भी दो । इन तीन बातों को करने से आदमी देवताओं के पास जाता है ।

(५४)

काया की चंचलता से बचो । काया का संयम रखो शारीरिक दुश्चरित्र को छोड़कर शरीर से सदाचरण करो ।

(५५)

वाणी की चंचलता से बचो । वाणी का संयम रखो । वाणी का दुश्चरित्र छोड़कर वाणी का सदाचरण करो ।

मन की चंचलता से बचो । मन का संयम रखो ।
मन का दुश्चरित्र छोड़कर मानसिक सदाचरण करो ।

(५७)

जो काय से संयत हैं, वाणी से संयत हैं, मन से संयत
हैं वे ही अच्छी तरह से संयत कहे जा सकते हैं ।

(५८)

बहुत बोलने से पंडित नहीं होता । जो क्षेमवान,
अवैरी और निर्भय होता है, वही पंडित कहलाता है ।

(५९)

जो पुण्य और पाप से परे हो गया है, जो ब्रह्मचारी
है, जो ज्ञानपूर्वक लोक में विचरता है वह भिक्षु है ।

(६१)
 भिक्षुओ ! शीलवान होने से, व्रती होने से, बहु-
 श्रुत होने से, समाधिलाभी होने से, व एकान्तवासी
 होने से मैं जनों से असेवित नैष्कर्म्य सुख का लाभ
 ले रहा हूँ । जब तक चित्त के मलों का त्याग न कर लो
 तब तक चैन न लो ।

(६१)

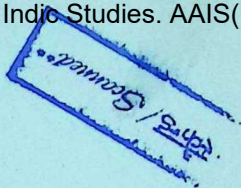
थोड़े सुख के परित्याग से यदि बहुत सुख की प्राप्ति
 होती दिखाई दे तो बुद्धिमान को चाहिए कि बहुत सुख के
 लिए थोड़े सुख का त्याग कर दे ।

(६२)

सत्पुरुष हिमालय पर्वत की तरह दूर से प्रकाशित
 होते हैं । असत्पुरुष रात में फँके बाण की तरह
 दिखाई नहीं देते ।

जो फटे पुराने वस्त्रों को धारण करता है, जो पतला दुबला है, जिसकी नसें दिखाई देती हैं, जो बन में अकेला ध्यान करता है, वह ब्राह्मण है । ब्राह्मणी माता से पैदा होकर कोई ब्राह्मण नहीं होता । जिसके पास कुछ नहीं है वही ब्राह्मण है । जो अक्रोधी है, व्रती है, सदाचारी है, तृष्णारहित है, संयमी है वही ब्राह्मण है । कमल के पत्ते पर बूंद की तरह जो काम भोगों से अलिप्त है वही ब्राह्मण है । जो गम्भीर प्रज्ञावाला है, जो मेधावी है, जो मार्ग कुमार्ग को पहचानता है जो असंग्रही है, वह ब्राह्मण है । जो इच्छा रहित है, आसक्ति रहित है, जिसने गाढ़े अमृत को पी लिया है वह ब्राह्मण है । जो काम भोगों को छोड़ कर अनिकेतन हो, परिव्राजक बन गया है, जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो गया है, और जिसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है वही सच्चा ब्राह्मण कहा जा सकता है ।

सिटीज़न प्रेस, कानपुर ।



tization by American Academy of Indic Studies. AAIS(U

